प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

जून 2018

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

किसान भाइयो, जब यह अंक आपके हाथों में पहुँचेगा, नवतपा समाप्त हो चुका होगा और धान की बुआई की तैयारियाँ जोरों पर होंगी। जेठ माह के आखिरी सप्ताह में जब सूर्य रोहिणी नक्षत्र में प्रवेश करता है, तब उत्तर भारत में नौ दिनों तक धरती खूब तपती है। इन दिनों को नौतपा या नवतपा कहा जाता है। मान्यता है कि नवतपा में सूर्य जितनी अधिक तपाएगा, बारिश उतनी ही अच्छी होगी। यह कुदरत का चक्र है, जो जीवन में भी लागू होता है। बड़े बुजुर्ग कहते हैं कि सुख और दुख दोनों जीवन चक्र का हिस्सा हैं। जब कष्ट का दौर आता है, भरपूर तपाता है, तो समझ जाना चाहिए कि राहत देने वाली बारिश जल्दी आने वाली है। यह चक्र निराशा भरे दौर में आशा का संदेश है। कष्ट जितना अधिक होगा, राहत भी उतनी ही सुकूनदेह होती है।

खेती में जितना महत्व बारिश का है, उतना ही महत्व गर्मी का भी है। वैज्ञानिक सिफारिश करते हैं कि मई–जून में खेतों की गहरी जुताई कर छोड़ देना चाहिए। जुताई से खेतों में सारे हानिकारक कीट और रोगाणु ऊपरी सतह पर आ जाते हैं और तपती धूप में नष्ट हो जाते हैं। कीट और रोग रोकने का यह ऐसा कुदरती तरीका है जो किसी भी रसायन से अधिक कारगर है। इससे आगामी ऋतु में फसल उगाने के लिए खेत सुरक्षित हो जाता है।

गत कुछ वर्षों में देखा गया है कि बारिश अपनी प्रकृति बदल रही है। कुल बारिश की मात्रा भले ही पहले जितनी हो, लेकिन उसका वितरण असमान हो गया है। पहले जहाँ बारिश रह–रहकर पूरे मौसम में चलती रहती थी और फसल को अपने पूरे जीवनकाल में सिंचाई मिलती थी, वहीं अब टुकड़ों में होती है। कभी भारी बारिश होती है, तो कभी दो फुहारों के बीच लंबा सूखा अंतराल आ जाता है। यह दोनों स्थितिया फसल के लिए नुकसानदेह होती हैं। इसे ध्यान में रखते हुए आवश्यक हो गया है कि किसान भाई अपनी खेती में तदनुसार बदलाव करें। अधिक बारिश से मिलने वाले अतिरिक्त जल को अपने खेतों में ही संचित करें ताकि शुष्क अंतरालों के दौरान सिंचाई के लिए जल उपलब्ध रहे। इस संचित जल से आने वाले रबी की फसलों में भी सिंचाई की जा सकती है। इस प्रकार के संचयन को एक बहुत सुंदर वाक्य में कहा गया है, "गाँव का पानी गाँव में, खेत का पानी खेत में"।

साथियो, अब समय आ गया है कि भूमिगत जल से बिलकुल छेड़छाड़ न की जाए। आपने स्वयं महसूस किया होगा कि कुओं का जलस्तर काफी गिर गया है। कई स्थानों पर पीने के पानी की समस्या भीषण रूप धारण कर चुकी है। हालाँकि इसमें सुधार तो तभी आएगा जब बड़े पैमाने पर कोई राष्ट्रीय नीति लागू होगी। तब तक हम हाथ पर हाथ धरे इंतजार नहीं कर सकते। अपने आने वाली पीढ़ी के लिए पीने का पानी मिल सके इसके लिए आवश्यक हो गया है कि अब भूमिगत जल का दोहन रोकना होगा।

इसी प्रकार कई ऐसी ज्वलंत समस्याएँ हैं जिनपर तुरंत कार्रवाई आवश्यक है। किसानों की आर्थिक दशा सुधारना, खेती में रसायनों का हानिकारक इस्तेमाल रोकना, समय पर आवश्यक बीजों, खाद, अन्य इनपुट और उचित मार्गदर्शन उपलब्ध कराना आदि। सरकार अपने तौर पर कार्य कर रही है। आप सब जानते हैं कि आगामी 3 वर्षों में किसानों

की आय दुगुनी करने का लक्ष्य है। लेकिन साथ ही यह भी जरूरी है कि हमें आगे बढ़कर स्वयं के स्तर पर भी इन समस्याओं का समाधान तलाशना है।

यह तभी संभव है जब किसान और गैर किसान जन, सभी आपस में संगठित होकर योजनाबद्ध तरीके से खेती करेंगे। आपने देखा होगा कि जहाँ–जहाँ किसानों ने संगठन बनाकर कार्य किया है, वहाँ–वहाँ वे बाजार में अपने हितों को सुरक्षित रख पाए हैं और सम्मानजनक आय अर्जित कर रहे हैं। बाजार को नियंत्रित करना या उसमें अपनी शर्तें मनवाना एक किसान के बस का नहीं है। इसके लिए संगठित रूप से ही प्रयास जरूरी है।

प्रसार दूत के इस अंक में आगामी ऋतु को ध्यान में रखकर समसामयिक आलेखों को शामिल किया गया है, जैसे खरीफ दलहनी फसलों की उत्पादकता बढ़ाने हेतु प्रबन्धन, अगेती फूलगोभी से कमाएं अधिक आय, भंडारित अनाज के कीट एवं उनका प्रबंधन, आधुनिक तकनिक से करें भरपूर फल उत्पादन, आम पौध प्रवर्धन की उन्नत विधियां, कद्दूवर्गीय सब्जियों की लाभकारी खेती के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियां, कृषि सिंचाई हेतू लवणीय भू–जल का उचित प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य बनाये रखने हेतु मृदा परीक्षण क्यों आवशयक, कीटनाशक रसायनों का प्रयोग करते समय आवश्यक सावधानियाँ एवं निर्देश, अमरूद सुधार हेतू परम्परागत एवं आणविक प्रजनन तकनीक। उम्मीद है किसान भाइयों को इसमें अपने लिए काम की सामग्री मिलेगी। यह अंक आपको कैसा, लगा इस बारे में अवश्य बताएँ।

संपादक

जून 2018

प्रसार दूत

वर्ष 23 | 2018 | अंक-2

संरक्षक
डॉ. ए.के. सिंह
कार्यवाहक निदेशक

डॉ. जे.पी. शर्मा
संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक
डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक
डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल
डॉ. वाई. वी. सिंह
डॉ. एम. के वर्मा
श्री के. एस. यादव
डॉ. हरीश कुमार
श्री आनन्द विजय दुबे

तकनीकी सहयोग
डॉ. वी.एस. सोलंकी
श्री सुरेन्द्र पाल
श्री राजेश कुमार

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012
फोनः 011–25841039
एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)
ई–मेलः incharge_atic@iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. खरीफ दलहनी फसलों की उत्पादकता बढ़ाने हेतु प्रबन्धन 1

2. अगेती फूलगोभी से कमाएं अधिक आय 10

3. भंडारित अनाज के कीट एवं उनका प्रबंधन 13

4. आधुनिक तकनिक से करें भरपूर फल उत्पादन 17

5. आम पौध प्रवर्धन की उन्नत विधियां 34

6. कद्दूवर्गीय सब्जियों की लाभकारी खेती के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियां 38

7. कृषि सिंचाई हेतू लवणीय भू–जल का उचित प्रबंधन 41

8. मृदा स्वास्थ्य बनाये रखने हेतु मृदा परीक्षण क्यों आवशयक ? 43

9. कीटनाशक रसायनों का प्रयोग करते समय आवश्यक सावधानियाँ एवं निर्देश 48

10. अमरूद सुधार हेतू परम्परागत एवं आणविक प्रजनन तकनीक 51

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा

एक प्रति मूल्य ₹ 20/–

खरीफ दलहनी फसलों की उत्पादकता बढ़ाने हेतु प्रबन्धन

उम्मेद सिंह[1], आर. एस. बाना[2] एवं सीमा सेपट[2]

[1]भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर, उत्तर प्रदेश–208 024
[2]सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

भारत में शाकाहारी लोगों हेतु दालें प्रोटीन का मुख्य स्त्रोत हैं। उत्पादन एवं क्षेत्र की दृष्टि से खरीफ दलहनी फसलों जैसेः अरहर, मूँग एवं उड़द का विश्व में भारत का प्रथम स्थान है। मृदा की उत्पादन क्षमता को टिकाऊ बनाए रखने एवं बढ़ाने में दलहनी फसलों की भूमिका सर्वविदित है। दलहनी फसलों की पत्तियों व फलियों के छिलके पशुओं के लिए पौष्टिक चारे के रूप में काम लिये जाते है। दलहनी फसलें उगाने से इसकी जड़ों में पाये जाने वाले राइजोबियम जीवाणु मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्वि करते है। इसके अतिरिक्त दलहनी फसलें मृदा क्षरण रोकने में व वायु प्रतिरोधक फसल के रूप में भी उपयोगी है। इनको मिश्रित फसल के रूप में अन्य फसल के साथ उगाकर अतिरिक्त लाभ लिया जा सकता है। अन्य फसलें जैसे धान या गेंहूँ की खेती की तुलना में दलहन फसलें कम उपयोगी या अनुपयुक्त जगहों पर उगाना आसान हैं। क्योंकि दलहनी फसलें अधिक प्रतिरोधी होती है। फिर भी दलहनी फसलों की उत्पादकता अपनी आनुवांशिक क्षमता से काफी कम है।

जलवायु

अरहरः अरहर सूखे के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी है। यह प्रकाश अवधि से अति संवेदनशील है। लघु प्रकाश अवधि अरहर की वानस्पतिक अवस्था एवं फूल आने की प्रारम्भावस्था को कम कर देती है। आर्द्र व शुष्क दोनों प्रकार के गर्म जलवायु के क्षेत्रों में अरहर की खेती की जा सकती है। शुष्क जलवायु के ऐसे क्षेत्र इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहता है जहाँ पर सिचाई सुविधा उपलब्ध हो। पौधों की उचित बढ़वार के लिए नम जलवायु उपयुक्त रहती है। अरहर की अच्छी वृद्धि हेतु 18^0–27^0 सेन्टीग्रेड तापमान (हवा का) उचित है। फिर भी अरहर की कुछ किस्में 10^0 सेन्टीग्रेड से कम एवं 35^0 सेन्टीग्रेड से अधिक तापमान भी सहन कर सकती है। इसकी खेती के लिए 75 से 100 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त है। पौधों पर फूल आते समय व फलियाँ बनते समय तेज धूप की आवश्यकता होती है। फसल पकते समय पाला पड़ना व तेज वर्षा होना हानिकारक है।

मूँगः अल्प एवं दीर्घ कालिक प्रकाश अवधि वाली किस्में उपलब्ध होने के कारण मूँग सभी ऋतुओं (खरीफ, रबी एवं जायद) में आसानी से उगायी जा सकती है। मूँग की फसल पाला पड़ने, जल मग्न मृदा एवं लवणता से संवेदनशील हो जाती है, परन्तु शुष्क सहिष्णु है। अच्छी वृद्धि हेतु 600–750 मी.मी. तक की वर्षा उपयोगी है। पुष्प आते समय भारी वर्षा मूँग के लिए अनुपयुक्त है, क्योंकि इससे परागण एवं निषेचन प्रभावित होता है फलस्वरूप फलियाँ कम बनती है। मूँग की अच्छी वृद्धि, विकास एवं उत्पादकता हेतु, गर्म आर्द्र जलवायु के साथ मृदा में उचित नमी का होना आवश्यक है। उत्तरी भारत में यह मुख्य रूप से खरीफ एवं ग्रीष्म ऋतु में तथा दक्षिण भारत में रबी ऋतु में उगाई जाती है। मूँग की अच्छी उत्पादकता हेतु उचित तापमान (वायु) की आवश्यकता 30–35^0 सेन्टीग्रेड है फिर भी 45^0 सेन्टीग्रेड तक तापमान सहन कर सकती है।

उङदः मुख्य रूप से खरीफ में उङद की खेती की जाती है। फिर भी रबी एवं ग्रीष्म ऋतु में भी उङद की अच्छी फसल ली जा सकती है। उङद एक उष्णकटिबन्धीय फसल है। यह उच्च तापमान के प्रति सहनशील है। दीर्घ प्रकाश अवधि मुख्य रूप से इसके लिए उपयुक्त है, परन्तु प्रकाश अवधि से उदासीन किस्मों के विकसित होने से उङद की खेती ग्रीष्म ऋतु में भी ली जाने लगी है। पौधों की उचित वृद्धि हेतु वायु का उचित तापमान 25 से 35^0 सेन्टीग्रेड एवं आर्द्रता 50–70 प्रतिशत उपयुक्त माना गया है, परन्तु यह 45^0 सेन्टीग्रेड तक तापमान भी सहन कर सकता है। उङद

अत्यधिक दृढ़ एवं शुष्क प्रतिरोधी होने के कारण कम वर्षा (650 मी.मी. या कम) वाले क्षेत्रों में भी उगाई जा सकती है। परन्तु मेघाच्छन्न मौसम एवं अधिक पारा उड़द की खेती के लिए अनुपयुक्त है।

जुताई कार्य एवं बीजाई की तैयारी

अरहरः मूसला जड़ होने के कारण अरहर की जड़े कठोर मिट्टी में अधिक गहराई से भी पानी एवं पोषक तत्वों का अवशोषण कर सकती है। इसी कारण अरहर को अधिक महीन एवं गहरी जुताई की आवश्यकता नहीं होती है। जलाक्रान्त रोकने हेतु उचित जलनिकास अति आवश्यक है। जुताई के समय खेत के समतल होने से पानी की बचत होती है। सामान्यतः खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद 2–3 जुताइयाँ देशी हल या कल्टीवेटर से करके पाटा लगा सकते हैं।

मूँगः मूँग के लिए बीज की क्यारी बनाने हेतु जुताई कार्य वहाँ के मौसम, मृदा का प्रकार एवं फसल प्रणाली पर निर्भर करता है। चिकनी मिट्टी में मृदा शुष्कता एवं भूमि प्रतिरोधिता मूँग अंकुरण में मुख्य बाधा है। इसलिए उचित जुताई एवं मृदा नमी सुनिश्चित करनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में मूँग की खेती करने हेतु पलेवा करके एक गहरी जुताई और उसके बाद 2 हल्की जुताई करके पाटा लगाना उचित है। मिट्टी की अच्छी जुताई करने से वर्षा ऋतु में बोई गई मूँग में खरपतवार एवं अन्य कीट एवं व्याधियों का प्रकोप भी कम होता है।

यदि मूँग की बुवाई रबी में संरक्षित नमी पर करना है तो नमी संरक्षण हेतु न्यूनतम जुताई करे एवं पलवार बिछाना उचित होता है। मृदा में उचित वायु संचरण एवं खरपतवार निंयत्रण करने हेतु एक या दो अन्तः शस्य क्रियाएं करना लाभकारी सिद्ध हुआ है। प्रायः देखा गया है कि दोमट और बलुई मिट्टी में काली चिकनी मिट्टी के बजाए कम जुताई की आवश्यकता होती है।

उड़दः प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि उड़द की खेती हेतु महीन जुताई की आवश्यकता नहीं होती है। खेत की अच्छी तैयारी, अधिक अंकुरण एवं पौधों की आबादी समान बनाए रखने में सहायक है। दोमट मिट्टी में एक गहरी जुताई, दो हल्की जुताई एवं पाटा लगाना उचित है। देखा गया है कि उड़दके खेत में उचित जल निकास नहीं होने से फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है अतः उचित जल निकास का प्रबन्धन होना जरूरी है। यदि उड़द की बुवाई तराई क्षेत्र में धान के बाद करनी है तो बगैर जुताई के ही बुवाई की जा सकती है। फसल जमने के बाद एक या दो अन्तः कृषि क्रियाएं करने से भूमि सतह से वाष्पीकरण एवं खरपतवारों की आबादी में कमी आती है तथा जड़ वृद्धि उत्तम होती है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि खरीफ की दलहनी फसलों की बुवाई हेतु उचित जल निकासी प्रबन्ध के साथ भूमि का पी. एच. मान 6.5 से 8.5 के मध्य हो। इससे मृदा में घुलनशील लवणों की मात्रा अधिक नहीं होगी। बलुई दोमट एवं चिकनी दोमट मृदा खरीफ दलहन के लिए आदर्श होती है।

खरीफ दलहनों की उन्नत किस्में

अरहर : अरहर की सफलतापूर्वक खेती करने हेतु उचित प्रजाति एवं विश्वसनीय बीज की उपलब्धता महत्वपूर्ण है। अरहर में लगभग 4 प्रतिशत तक पर–परागण होता है अतः प्रतिवर्ष शुद्ध एवं विश्वसनीय बीज का इस्तेमाल करना चाहिए। अरहर की अल्पकालिक, मध्यम अवधि एवं दीर्घकालिक प्रजातियाँ तालिका 1 में दर्शाई गई है।

तालिकाः 1 अरहर की प्रमुख प्रजातियाँ

पकने की अवधि	उपयुक्त क्षेत्र	प्रजातियाँ
अल्पकालिक	उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	पूसा 991, पूसा 992, पूसा 2001, पूसा 2002, माणक, पारस, ए.एल. 201, यू.पी. ए.एस. 120, पी.ए. 201, बी.एल.ए. 1,
	मध्य क्षेत्र	टी. टी. 401, जी.टी. 100, ए.के.टी. 8811, टी.जे.टी. 501, आई.सी.पी.एल. 87, बानस

	दक्षिणी क्षेत्र	वम्बन 3, सी.ओ.आर.जी. 9701, आई.सी.पी.एल. 84031, आई.सी.पी.एल. 151, आई, सी,पी,एल. 87
मध्यकालिक	मध्य क्षेत्र	बी.एस.एम.आर. 736, जे.के.एम. 189, बी.एस.आर. 853, बी.डी.एन. 708, विपुला, राजीव लोचन, बी.डी.एन. 2
	दक्षिणी क्षेत्र	डब्ल्यू.आर.पी. 1, बी.आर.जी. 1, बी.आर.जी. 2, आई.पी.सी.एल. 332, टी.टी.बी. 7, टी.एस. 3, एच.वाई. 3 सी.
दीर्घकालिक	उत्तर – पूर्वी मैदानी क्षेत्र	बहार, अमर, नरेन्द्र अरहर 1, पूसा 9, नरेन्द्र अरहर 2, मालवीय अरहर 13, एम. ए. 6, आजाद, डी.ए. 11, आई.पी.ए. 203, मालवीय अरहर 6

मूँग : मूँग का खाद्य आंकलन उसमें उपस्थित उच्च एवं आसानी से सुपाच्य प्रोटीन से किया जाता है। औसत रूप से मूँग के बीज में तकरीबन 25 प्रतिशत प्रोटीन, 62–65 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट(शुष्क भार पर आधारित), 4.5–5.5 प्रतिशत राख, 3.5–4.5 प्रतिशत रेशा एवं 1.0–1.5 प्रतिशत वसा पाई जाती है। भारतवर्ष में उगाई जाने वाली मूँग की उन्नत प्रजातियाँ (तालिका 2) निम्न है–

तलिकाः 2 मूँग की प्रमुख प्रचलित प्रजातियाँ

विशेषता	**प्रजातियाँ**
अल्पकालीन (बसन्त/ग्रीष्म ऋतु के लिए, 60–65 दिन में पकने वाली)	सम्राट, पूसा विशाल, मेहा, आई.पी.एम. 2–3, पंत मूँग 5, ओ.यू.एम. 11–5, टी.बी. एम. 37, एस.एम.एल. 668, एच.यू.एम. 1, एच.यू.एम. 16
वृहत बीज आकार (4ग्रा0 प्रति 100 बीज)	पंत मूँग 5, एस.एम.एल. 668, पूसा विशाल, आई.पी.एम. 2–3, टी.बी.एम. 37, एच.यू.एम. 16
पाउडरी मिलड्यू से प्रतिरोधी (रबी के लिए)	वम्बन 2, वम्बन 4, टी.एम. 96–2, बी.पी.एम.आर. 145, टी.ए.आर.एम. 18
मूँग यलो मौजेक वाइरस से प्रतिरोधी	सम्राट, मेहा, आई.पी.एम. 2–3, नरेन्द्र मूँग 1, पंत मूँग 6, एच.यू.एम. 1, एच.यू.एम. 12, पंत मूँग 4, एम.एच. 2–15

उङदः मूँग की तरह उङद में भी उच्च एवं सुपाच्य प्रोटीन पाई जाती है। औसत रूप से उङद के बीज में तकरीबन 24–25 प्रतिशत प्रोटीन, 1.0–1.5 प्रतिशत वसा, 3.5–4.5 प्रतिशत रेशा, 4.5–5.5 प्रतिशत राख एवं 60–62 प्रतिशत कार्बोहाईड्रेट की मात्रा पाई जाती है।

भारत में प्रचलित मूँग की प्रजातियाँ तालिका 3 में दर्शाई गई है।

तलिकाः 3 उङद की प्रमुख प्रजातियाँ

विशेषता	**प्रजातियाँ**
अल्पकालिक	डब्ल्यू.बी.यू. 109, पी.डी.यू. 1, पंत यू. 31, के.यू. 300, के.यू. 92–1
पाउडरी मिलड्यू से प्रतिरोधी	एल.बी.जी. 625, एल.बी.जी. 709, एल.बी.जी. 645, वम्बन 4, एल.बी.जी. 623, डब्ल्यू.बी.जी. 26, एल.बी.जी. 685
यलो मौजेक वाइरस से प्रतिरोधी	डब्ल्यू.बी.यू. 108, पंत यू. 30, पंत यू. 31, पंत यू. 40, आजाद उङद1, सेखर 3, सेखर 2, आजाद उङद2, उत्तरा, नरेन्द्र उङद1, माश 1008, आई.पी.यू. 02–43, डब्ल्यू.बी.यू. 109
पाउडरी मिलड्यू एवं यलो मौजेक वाइरस से प्रतिरोधी	आई.पी.यू. 02–43, एल.बी.जी. 625, एल.बी.जी. 685

बीज उपचार

खरीफ दलहनी फसलों में अधिक उत्पादन एवं अच्छी फसल आबादी निर्धारण हेतु बीज की गुणवत्ता अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अपर्याप्त बीज उत्पादन एवं त्रुटिपूर्ण वितरण सुविधा होने के कारण किसानों के मध्य उन्नत किस्मों की उपलब्धता नहीं होने से भी उत्पादन कम मिल पाता है। जबकि भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर एवं अन्य कृषि विश्वविद्यालयों ने उन्नत किस्में विकसित की है। किसानों के पास अनुचित या अपर्याप्त भण्डारण सुविधा, बीज श्रेणीकरण एवं कीट या रोग ग्रसित होने से बीज की गुणवत्ता में कमी आती है। फलस्वरूप बीज अंकुरण प्रतिशतता एवं पौधों की आबादी में कमी आ जाती है। अतः विश्वसनीय स्त्रोत से ही बीज खरीदकर बुवाई करें ताकि बीज की गुणवत्ता एवं आनुवांशिक रचना बनी रहे।

दलहनी फसलों से अधिक उत्पादन लेने हेतु बीजोपचार एक महत्वपूर्ण तरीका है। बीजोपचार के निम्नांकित फायदे हैं–

क. जड़ क्षेत्र के पास जड़ ग्रन्थिका वाले सूक्ष्म जीवों की आबादी को बढ़ाना।

ख. अंकुरण एवं अंकुर निकलते समय बीज को विनाशकारी कीटों एवं व्याधिकारक रोगाणुओं से बचाना।

ग. नत्रजन स्थिरीकरण एवं फॉस्फोरस की उपलब्धता को बढ़ाना।

बुवाई से पूर्व मृदाजनित रोगों से बचाव हेतु बीजों को कवकनाशी (2–3 ग्रा. केप्टान या थिराम प्रति कि. ग्रा. बीज) तथा नत्रजन स्थिरीकरण एवं फॉस्फोरस उपलब्धता बढ़ाने हेतु क्रमशः राइजोबियम तथा फॉस्फेट विलेयी जीवाणु (पी.एस.बी.) या वासिकुलर आर्बुस्कूलर माइकोराइझा (वी.ए. एम.) (20–25 ग्रा. प्रति कि. ग्रा. बीज) से उपचारित करना लाभकारी होता है। बलुई मिट्टी में जहाँ दीमक एवं कर्तन कीट का खतरा ज्यादा होता है वहाँ पर कार्बोफ्यूरान या क्लोरपाइरोफॉस से बीजोपचार करने पर फसल उत्पादकता में वृद्धि होती है।

किसानों को रोग एवं कीट अवरोधी प्रजातियाँ अपनाने के साथ–साथ फसल चक्र को समय–समय पर बदलते रहना चाहिए, ताकि रोग एवं कीट से बचाव किया जा सके।

बुवाई की विधि

खरीफ दलहनी फसलों की अधिक उत्पादकता ग्रहण करने हेतु उचित आबादी प्रबन्धन आवश्यक है। (तालिका 4 एवं 5) उचित बीज दर, बुवाई का समय, बुवाई की विधि, बीज आकार, अंकुरण प्रतिशत, फसल ज्यामिति इत्यादि फसल आबादी प्रबन्धन के मुख्य कारक है। अनुकूलतम बीज दर की मात्रा फसल प्रणाली, बीज परीक्षण भार एवं अंकुरण प्रतिशतता पर निर्भर करता है। सामान्यतः लंबी अवधि वाली दलहन उगाने हेतु कम बीज दर चाहिए जबकि अल्प अवधि में पकने वाली फसल को अधिक बीज दर की जरूरत होती है। क्योंकि लंबी अवधि की फसल को वानस्पतिक वृद्धि हेतु लम्बे समय की जरूरत पड़ती है एवं अधिक क्षेत्र ग्रहण करती है। इसी प्रकार, ग्रीष्म कालीन दलहन को बीज दर अधिक चाहिए एवं खरीफ दलहन को कम, क्योंकि ग्रीष्म ऋतु में अधिक तापमान होने से बीज अंकुरण कम एवं पौधों के मरने की सम्भावना अधिक होती है। बुवाई हेतु बीज शुद्ध, रोग मुक्त, भौतिक क्षति मुक्त तथा अंकुरण क्षमता 90–95 : हो।

तालिकाः 4 दलहनी फसलों की उपयुक्त बीज भार एवं पौध संख्या

फसल	अवधि	100 दानों का भार (ग्रा0)	उपयुक्त पौधों की संख्या (लाख/है0)
अरहर	अल्पकालिक	9.0	3.0 – 3.5
	मध्यकालिक	9.0	1.25 –1.50
	दीर्घकालिक	9.0	0.7 – 0.8
मूँग	खरीफ	3.0	3.0 – 3.5
	ग्रीष्मकालीन	3.0	4.0 – 4.25
उड़द	खरीफ	3.0	3.0 – 3.5
	ग्रीष्मकालीन	3.0	4.0 – 4.25

तालिकाः 5 खरीफ दलहनी फसलों हेतु बीज दर एवं दूरी

फसल	अवधि	बीज दर (कि.ग्रा/है.)	दूरी (से.मी.)	
			पंक्ति से पंक्ति	पौधे से पौधा
अरहर	अल्पकालिक	12–15	30	10
	मध्यकालिक	10–12	50	15
	दीर्घकालिक	8–10	60–75	25
मूँग	खरीफ	15–20	30	10
	ग्रीष्मकालीन	20–25	25	10
उड़द	खरीफ	12–15	30	10
	ग्रीष्मकालीन	18–20	25	10

खरपतवार प्रबन्धन

फसल उत्पादन में खरपतवार बहुत ही घातक एवं विरल जैविक बाधा है। खरपतवार फसल उत्पादकता घटाने के साथ ही उसकी गुणवत्ता में भी कमी लाता है। कृषि नाशक जीवों के द्वारा कुल नुकसान का लगभग 37 प्रतिशत योगदान खरपतवारों का है। खरपतवार से दलहन फसलों की पैदावार में औसतन 50–60 प्रतिशत तक की कमी देखी गई है, जो कि दलहन जाति एवं वंश तथा प्रबन्धन प्रणालियों पर निर्भर है। इसी प्रकार प्रभावी खरपतवार नियंत्रण से खरीफ दलहन फसलों जैसे अरहर, मूँग एवं उड़दमें 31 से 100 प्रतिशत तक पैदावार में वृद्धि अर्जित की गई है।

खरपतवार नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य अवांछनीय पौधों की वृद्धि को रोकना एवं लाभदायक या उपयोगी पौधों की वृद्धि को बढ़ाना है। अव्यवस्थित खरपतवार नियंत्रण के तरीके अपनाना हमारा उद्देश्य नहीं होना चाहिए। मुख्य खरपतवार प्रबन्धन के तरीके निम्नांकित है–

(क) खरपतवार रोकथाम : खरपतवारों का प्रवेश एवं स्थापना को रोकना, खरपतवार रोकथाम के लिए कारगर है। जैसे– खरपतवार मुक्त बीज की क्यारी बनाना, खाद को संदूषण मुक्त रखना, अजोत क्षेत्र को साफ रखना, मशीन और औजारों को साफ रखना इत्यादि।

(ख) सस्य क्रियाएँ : इसमें कम लागत एवं पर्यावरण अनुकूल तरीके जैसे फसल पालन, फसल चक्र, उचित पौध आबादी, अन्तः फसल, संरक्षित जुताई इत्यादि तरीके अपनाए जा सकते है।

(ग) कृषि यांत्रिकी द्वारा खरपतवार प्रबन्धन : इस विधि में खरपतवार नाशी यंत्र उपलब्ध है जैसे हस्तचालित निराई उपकरण, खुरपी, हस्तचालित हो, कुदाली, ग्रबर निराई उपकरण, खूँटीनुमा शुष्क भूमि हेतु निराई उपकरण, एकल पहिया हो, जुड़वाँ पहिया हो, शक्ति चालित झाड़ूनुमा जुताई यंत्र इत्यादि।

(घ) खरपतवार नाशी द्वारा खरपतवार नियंत्रण : हाथों द्वारा खेत से खरपतवार निकालना एक साधारण तरीका है, परन्तु पिछले सालों से देखा गया है कि कृषि श्रमिकों की संख्या घटती जा रही है। इसकी कमी सबसे पहले पंजाब, हरियाणा, उत्तराखण्ड, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में देखी गई। इसकी वजह मनरेगा में मजदूरी अधिक एवं श्रम कम होना भी है। अतः शाकनाशी या खरपतवारनाशी की माँग बढ़ती जा रही है। इसी क्रम में मूँग, उड़द एवं अरहर में निम्नांकित खरपतवार नाशी (तालिका 6) प्रयोग में लाए जा सकते है–

तलिकाः 6 मूँग, उङदएवं अरहर के लिए संस्तुत खरपतवारनाशी

खरपतवारनाशी	मात्रा (ग्रा0 सक्रिय घटक/है0)	उत्पाद (ग्रा0 या मि0ली0/है0)	छिड़काव का समय	विशेषता
एलाक्लोर	2000–2500	4000–5000	बुवाई के 0–3 दिन पश्चात्	ज्यादातर घास कुल के खरपतवार मारता है।कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार भी मारता है।
फ्लूक्लोरेलिन	750–1000	1500–2000	बुवाई पूर्व	मिट्टी में अच्छी तरह मिलाए, ज्यादातर घास कुल के एवं कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को मारता है।
पेन्डिमेथालिन	750–1000	2500–3000	बुवाई के 0–3 दिन पश्चात्	ज्यादातर घास एवं कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नष्ट करता है।
ऑक्जाडाइजोन	250	1000	बुवाई के 0–3 दिन पश्चात्	वृहत श्रेणी खरपतवार नाशी
ऑक्सीफ्लूरफेन	100–125	400–500	बुवाई के 0–3 दिन पश्चात्	वृहत श्रेणी खरपतवार नाशी
कुईजालोफॉपईथाइल	100	2000	बुवाई के 15–20 दिन पश्चात्	वार्षिक घास को मारना
इमाझिथापर	50–100	500–1000	बुवाई के 20–25 दिन पश्चात्	वृहत श्रेणी शाकनाशी
पेन्डिमेथालिन (अंकुरण पूर्व) एवं इमाझिथापर (उद्भव पश्चात्)	1200+100	4000+1000	बुवाई के 0–3 दिन पश्चात् एवं बुवाई के 20–25 दिन पश्चात्	वृहत श्रेणी शाकनाशी

खरीफ दलहन में कीट प्रबन्धन

अरहर के कीट

अरहर की फसल को बुवाई से लेकर कटाई तक विभिन्न अवस्थाओं में अनेक कीटों द्वारा क्षति पहुँचाई जाती है। साधारणतया अरहर में लगने वाले कीट, पत्ती जालक (लीफ वेबर), ब्लिस्टर बीटल, चना फली भेदक, धब्बेनुमा फली भेदक, नीली तितली, साहुल पतंगा (प्लूम मोथ), फली मक्खी एवं फली बग है। परन्तु भारी क्षति मुख्यतः फली भेदक, फली मक्खी एवं ब्लिस्टर बीटल कीट पहुँचाते हैं।

अ. फली भेदक (हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा)– अरहर का यह प्रमुख कीट है। इस कीट की मादा पतंगा अपने अंडे मुख्यतः अरहर के पुष्पों, कलियों, कोमल फलियों पर देती है। रात्रि में दिए गए गोल अंडो से 2–5 दिन में गिड़ारें निकलकर अगले 4–5 दिनों तक फलियों के ऊपरी भाग को खुरचकर खाती हैं। तत्पश्चात् गिड़ारें फलियों में गोलाकार छिद्र बनाकर अपना अग्रभाग छोड़कर विकसित हो रहे दानों को खाना शुरू कर देती हैं। अल्पकालिक अरहर को ज्यादा क्षति पहुँचाती है।

प्रबन्धनः

- गर्मियों में गहरी जुताई करें।
- खेत में फिरोमोन ट्रेप लगाएं (5 प्रति है0)।
- 1.0 से 1.5 किग्रा0/है0 बेसिलस थूरिंजिएंसिस कुर्सटाकी का संरूपण प्रयोग करने पर तीसरे इन्स्टार डिम्ब मर जाता है।
- जैव नियंत्रक कारक जैसे क्राइसोपर्ला जस्ट्रोवी अरेबिका, केम्पोलेटिस क्लोरीडि, यूसेलाटोनिया

ब्रयानी एवं कार्सेलिया इलोटा का संवर्धी निर्गमन।

- बेन्जोएट 5 एस.जी. (0.2 ग्रा0/ली0) या प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. (2 मी.ली./ली.) या राइनाक्सीपाइर 20 एस.सी. (0.15 मी.ली./ली.) का छिड़काव।
- एच.ए. एन.पी.वी. (1 मी.ली./ली.) या नीम बीज का तेल 5 प्रतिशत (50 ग्रा0/ली0) या नीम का तेल 3000 पी.पी.एम. (20 मी.ली./ली.) का छिड़काव करें।

ब. फली मक्खी (मेलानाग्रोमाइजा ऑब्ट्यूसा)– यह उत्तरी भारत में अरहर को ज्यादा क्षति पहुँचाती है। अण्डों से निकलने के बाद गिड़ारें विकसित दानों की बाह्म पर्त को कुछ समय तक खाती है। तत्पश्चात् दानों को छेदकर प्रवेश कर जाती है एवं भीतर ही भीतर दानों को खा जाती है। पूर्ण विकसित गिड़ार दाने पर नालीनुमा स्थान बनाकर बाहर निकल आती है।

प्रबन्धन :

- अवरोधी किस्में (आई.सी.पी.एल. 87119, एम. ए. 3, आई.सी.पी.एल. 8102–5–एस. 1, एस.एल. 12–3–1, एल.एल. 12–1) उगाए।
- अरहर की बुवाई जल्दी (15 मई से 15 जून तक) करें।
- प्राकृतिक शत्रु जैसे ओर्मीरस औरिएन्टालिस, यूडेरस लीविडस, यूरीटोमा इत्यादि को खेत में छोड़ें।
- नीम आधारित दवाईयाँ जैसे लेम्बडा साइहेलोथ्रिन 5 ई.सी. (400–500 मी.ली. दवा 400–600 ली. पानी में मिलाकर या लूफेनुरोन 5.4 ई.सी. (2.5 ली. दवा 700 ली. पानी में) का छिड़काव करें।

स. ब्लिस्टर बीटल (माइलेब्रिस पूस्टूलेटा)– इस कीट का प्रौढ़ पुष्पों, पत्तियों एवं कोमल अग्रभाग को खाकर फलियों में दानें बनने की प्रक्रिया को रोक देता है। एक मादा 2,000 से 10,000 तक अण्डे जमीन पर देती है।

प्रबन्धनः

- हाथ में मोजे पहनकर प्रौढ़ बीटल को पकड़ना।
- प्रौढ़ बीटल को कीट जाल में फँसाकर मार देना या जला देना।
- डाइमेथोएट (0.03 प्रतिशत घोल का छिड़काव) या साइप्रमेथ्रिन 10 ई.सी. (1.0 मी.ली./ली.) या लेमडा साइहेलोथ्रिन 5 ई.सी. (1.0 मी.ली./ली.) का छिड़काव करें।

मूँग एवं उड़द के कीट

मूँग और उड़द पर पाए जाने वाले हानिकारक कीटों की समस्या फसल की अवस्था, तापमान, वर्षा, नमी, सूर्य के प्रकाश इत्यादि कारकों पर निर्भर करती है। सामान्य रूप से मूँग एवं उड़द को नुकसान पहुँचाने वाले कीट सफेद मक्खी (बेमिसिया टेबेसी), एफिड (एफिस क्रेसिवोरा), बीन थ्रिप्स (मेगालूरोथ्रिप्स डिस्टेलिस), फली बग (क्लेवग्राला गीब्बोसा), नीली तितली (लेम्पीड्स बोइटिकस), बिहार हेयरी केटरपिलर (स्पलियोसोमा ऑब्लिका), रेड हेयरी केटरपिलर (एमसेक्टा मूरे), तम्बाकू केटरपिलर (स्पोडोप्टेरा लिटूरा), फली भेदक (हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा), धब्बानुमा फली भेदक (मरूका विट्राटा), तना मक्खी (ऑफियोमाइया फेजियोली) इत्यादि हैं।

प्रबन्धनः

- मक्का, ज्वार या बाजरा को बाधक फसल के रूप में लगाएँ।
- कपास को जाल फसल के रूप में उगाएँ।
- कीट रोधी किस्में (मूँगः एम. एल. 1256, एम. एल. 1260, एम. एल. 1191, पी. एम. एस. 3, एम. एल. 5, पी. आई. एम. एस. 2, उर्दः पी. डी. यू. 5, पी. डी. यू. 88–23, पी. डी. यू. 2, यू. जी. 567, यू. एल. 407, यू. एल. 597, यू. एल. 310) उगाएँ।
- इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एल. एल. द्वारा बिजोपचार करें एवं इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एल. एल. (0.2 मी. ली./ली. पानी) का 15 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव करें।
- नीम की निंबोली का तेल (5 प्रतिशत) या नीम का तेल 3000 पी. पी. एम. (2 प्रतिशत) का छिड़काव करें।
- परभक्षी जैसे कोक्सीनेलिड बीटल एवं क्राइसोपर्ला को खेत में छोड़ें।

खरीफ दलहनों में रोग प्रबन्धन

खरीफ दलहनों में लगने वाली रोगों से आर्थिक क्षति

होती है। अनुकूल वातावरण या तापमान एवं अधिक नमी रोग उत्पन्न करने वाले रोगाणुओं के विकास एवं वृद्धि में सहायक है। ये रोगाणु मुख्यतः कवक, जीवाणु एवं विषाणु होते हैं।

अरहरः अरहर के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबन्धन निम्न प्रकार से किया जाएँ–

अ. उकठा रोग– यह व्याधि अरहर में फ्यूजेरियम उडम ई. जे. बटलर कवक के संक्रमण से फैलती है। अरहर के पौधे अपने जीवन काल में कभी भी संक्रमित हो सकते हैं, परन्तु फूल आने या फली बनते समय इसकी सम्भावना अत्यधिक होती है। उकठाग्रस्थ पौधे के मुख्य तने पर जमीन से ऊपर की तरफ हल्की भूरी धारियाँ बन जाती है। तने को उर्धवत्ती सतह से काटने पर भूरे या काले रंग की धारियाँ दिखाई देती हैं। संक्रमित पौधे सूख जाते हैं।

प्रबन्धन :

- रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे बी.डी.एन. 2, बी.एस.एम. आर. 736, आई.सी.पी. 8863, आशा, नरेन्द्र अरहर 1 तथा अमर प्रजातियाँ उगाएँ।
- बहु व्याधि प्रतिरोधी किस्में उगाएँ।
- ग्रीष्म ऋतु में खेत की गहरी जुताई करें।
- ट्राइकोड्रमा हरजेनिएम या ट्राइकोड्रमा विरीडि (10 ग्रा. प्रति किग्रा. बीज) या कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू. पी. + थिराम 80 डब्ल्यू.पी. (1+3 ग्रा./किग्रा. बीज) से बीजोपचार करें।
- रोगग्रस्त पौधों को जड़ सहित उखाड़कर नष्ट कर दें।

ब. फाइटोप्थोरा अंगमारी– इस व्याधि का कारक फाइटोप्थोरा ड्रेच्सलेरी एफ.स्पी. केजेनी है। रोगग्रसित नवजात पौधों में शीर्ष गलन होता है, एवं ग्रसित पौधा लुढ़ककर गिर जाता है और सूख जाता है। इस रोग के लक्षण बुवाई के 40 दिन पश्चात् दिखना शुरू हो जाते हैं। छोटे पौधे का तेजी से सूखना, पत्तियों पर पीलापन हुए बगैर ही सूखना तथा ऊपर की ओर से गोलाई में मुड़ना इस रोग के प्रमुख लक्षण है। तने के आधार पर चारों तरफ गहरें भूरे से काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। रोग की अग्रावस्था में क्षतिग्रस्त जगह पर तना फूलकर विकृत या गलनशील हो जाता है, और घेरे का ऊपरी हिस्सा सूख जाता है।

प्रबन्धन :

- बहु प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।
- जल निकासी का उचित प्रबन्ध हो एवं जल को खेत में एकत्रित न होने दें।
- अरहर को उठी हुई क्यारी या मेड़ पर लगाएँ ताकि अधिक पानी नाली द्वारा निकल जाए एवं पौधा बच जाए।
- बीजों को 3 ग्रा. प्रति किग्रा. बीज की दर से मेटालेक्सिल एम.जेड. 35 डब्ल्यू.एस. से उपचारित करके बुवाई करें।

ग. बाँझ रोग– यह एक वाइरस जनित रोग है। सदिश कुटकी (वेक्टर माइट), अकेरिया केजनी अंकुरित कलियों एवं पौधे के अग्र भाग में शरण लेकर रोग फेलाता है। पौधों में धीमी वृद्धि, पत्तियों के आकार में कमी, पत्तियों पर चित्तिदार धब्बे, अत्यधिक शाखाएँ निकलना एवं पत्तियों का रंग हल्का हरा होना बाँझपन के मुख्य लक्षण है। ग्रसित पौधे में फूल तथा फलियाँ नही बनती है तथा ये बाँझ रहते हैं।

प्रबन्धन :

- बाँझ प्रतिरोधी प्रजातियाँ बहार, शरद, नरेन्द्र अरहर 1, अमर, आजाद, आशा, मालवीय विकल्प तथा हैदराबाद 3 सी. उगाएँ।
- रोगग्रस्त पौधों को उखाड़ दें।
- लक्षण दिखते ही कुटकी (वेक्टर) को पनपने से रोकने हेतु डाइकोफोल 18.5 ई.सी. (2.5 मी.ली./ली.) या ऑक्सिडेमेटोन मिथाइल 25 ई.सी. (2.0 मी.ली./ली.) या डाइमेथोएट 30 ई.सी. (1.7 मी. ली./ली.) का छिड़काव करें।
- रोग के पुनः फैलाव को रोकने हेतु क्लेथेन अथवा मारस्टान (0.1 प्रतिशत का घोल) का छिड़काव लाभदायक होता है।

मूँग एवं उड़दः मूँग एवं उड़द की प्रमुख रोग एवं प्रबन्धन इस प्रकार है–

अ. पीत चितेरी विषाणु : यह व्याधि जेमिनी समूह के

वाइरस , मूँगबीन यलो मोजेक वाइरस द्वारा फैलती है। इसका संवाहक श्वेत मक्खी (बेमीसिया टेबेसी) है। पत्तियों पर पीले तथा हरे धब्बों का दृष्टिगोचर होना पीत चितेरी विषाणु का मुख्य लक्षण है। रोग की अग्रावस्था में पत्तियों के पीलेपन का आकार बढ़ जाता है और अन्त में सभी पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। रोग की गम्भीर अवस्था में फलियाँ भी पीली हो जाती हैं, तथा आकार छोटा हो जाता है और दानों का आकार भी सिकुड़ जाता है।

प्रबन्धनः

- रोगरोधी प्रजातियों का चयन करें। जैसेः मूँग– नरेन्द्र मूँग 1, पन्त मूँग 3, सम्राट (पी.डी.एम. 139), पी.डी.एम. 11, एम.एल. 131, एम.एल. 267, एम. एल. 337, पूसा 105, एम.यू.एम. 2,उर्द– नरेन्द्र उड़द1, उत्तरा (आई.पी.यू. 94–1), पी.एस. 1, पन्त यू. 19, पन्त यू. 30, यू. जी. 218, डब्ल्यू.बी.यू. 108, के.यू. 92–1, के.यू. 300
- रोग ग्रसित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें।
- श्वेत मक्खी को मारने एवं पीत चितेरी विषाणु के प्रकोप को रोकने हेतु मेलाथियान 50 ई.सी. (2.0 मी.ली./ली.) या ट्रायाजोफोस 40 ई.सी. (2.0 मी. ली./ली.) या ऑक्सीडेमेटॉन मिथाइल 25 ई.सी. (2 मी.ली./ली.) या मेटासिस्टॉक्स (0.1 प्रतिशत घोल) का छिड़काव करें। जरूरत पड़ने पर 10–15 दिन के अन्तराल पर पुनः छिड़काव कर सकते हैं।

ब. पर्ण व्याकुंचन (लीफ क्रिंकल) रोग– यह व्याधि टोस्पोवाइरस समूह के उर्दबीन लीफ क्रिंकल वाइरस द्वारा होता है। वाइरस का संवाहन, एफिड, सफेद मक्खी, लीफ हॉपर एवं अर्क द्वारा होता है। इस रोग के विशिष्ट लक्षण पत्तियों की सामान्य से अधिक वृद्धि एवं तत्पश्चात् सिलवटें या मरोड़ पड़ना (व्याकुंचन) होता है। ये पत्तियाँ छूने पर सामान्य पत्ती से अधिक मोटी तथा खुरदरी प्रतीत होती है।

प्रबन्धनः

- रोग ग्रसित पौधों को उखाड़कर जला दें।
- रोग ग्रसित बीज नहीं बोएँ।
- इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू.एस. (5 मी.ली./किग्रा. बीज) द्वारा बीजोपचार लाभदायक होता है।
- बुवाई के लगभग 30 दिन पश्चात् डाइमेथोएट 30 ई.सी. (1.7 मी.ली./ली.) का छिड़काव करें।
- रोग रोधी किस्में उगाएँ। जैसेः **मूँगः** डी. 3–9, के. 12, एम.एल. 26, आर.आई. 59, टी. 44, आर.आई. आई. **उर्दः** एच.यू.पी. 27, एच.यू.पी. 102, एच.यू.पी. 164, एच.यू.पी. 315

स. सर्कोस्पोरा पत्र बुँदकी– सर्कोस्पोरा केनेसेन्स इसका प्रभावी कारक है। पत्तियों पर सिलेटी से भूरे कोणिय धब्बे पड़ जाते हैं। इन धब्बों के चारों तरफ लाल रंग की किनारी बन जाती है। गम्भीर अवस्था में फलियाँ बनते समय संक्रमित पत्तियाँ झड़ जाती हैं।

प्रबन्धनः

- खेत की सफाई, फसल चक्र, संक्रमित फसल अवशेष को नष्ट करना, संपार्श्विक मेज़बान से बचाना इत्यादि रोग के प्रभाव को कम करने में अत्यधिक सहायक है।
- बीज को थिराम या केप्टान (2.5 ग्रा./किग्रा. बीज) द्वारा उपचारित करें।
- लक्षण प्रकट होने पर कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. (1.0 ग्रा./ली.) या मेन्कोजेब 45 डब्ल्यू.पी. (2.0 ग्रा./ली.), कॉपर ऑक्सिक्लोराइड (3 से 4 ग्रा./ ली.) का छिड़काव लाभप्रद होता है। 10–15 दिन के अन्तराल पर पुनः छिड़काव करने पर अधिक लाभ मिलता है। छिड़काव करने पर अधिक लाभ मिलता है।

अगेती फूलगोभी से कमाए अधिक आय

श्रवण सिंह, बी.बी. शर्मा, आर.के. यादव, वी.के. शर्मा और बी.एस. तोमर
शाकीय विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.पं.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–12

फूलगोभी जाड़े के मौसम में उगायी जाने वाली एक प्रमुख सब्जी फसल है। फूलगोभी विभिन्न पोषक तत्वों (पोटेशियम, सोडियम, कैल्शियम, फॉस्फोरस आदि) और जैव–सक्रिय पदार्थो (ग्लूकोसिनोलेट्स) की एक प्रमुख स्त्रोत है। कुछ ग्लूकोसिनोलेट्स कैंसर से बचाने में सहायक हैं। भारत में इसकी खेती 452 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती हैं और उत्पादन 8499 हजार मीट्रिक टन हैं। वैसे तो फूलगोभी शीतकाल की एक महत्वपूर्ण फसल हैं लेकिन अगेती किस्मों के विकसित होने से अब इसकी खेती गर्मी एवं वर्षा ऋतु में भी किसान करने लगे हैं। अगेती फसल की पैदावार तो थोड़ी कम होती हैं लेकिन अधिक बाजार भाव, कम फसल अवधि और मौजूदा फसल प्रणाली में उत्तम समावेश होने के कारण इसकी लोकप्रियता किसानों में निरंतर बढ़ती जा रही हैं।

फूल बनने के लिए तापमान की आवश्यकता और परिपक्वता के आधार पर फूलगोभी के चार वर्ग बनाये गए हैं। इनमें अगेती समूह की फूलगोभी सितम्बर–अक्टूबर में तैयार हो जाती है। फूलगोभी की किस्मों का चुनाव सोच समझकर करना चाहिए क्योंकि अगेती किस्मों को मध्य या मध्य पछेता लगाने से बटनिंग (बहुत छोटे फूल बनना) की समस्या आती हैं और विपरीत स्थिति में पौधे कि वानस्पतिक बढ़वार तो होती रहती हैं परन्तु फूल का बनना उचित समय आने पर ही होता हैं।

अगेती फूलगोभी कि उन्नत किस्में:

पूसा मेघना: सितम्बर के अंतिम सप्ताह में कटाई के लिए तैयार, औसत पैदावार 100–120 क्विंटल/ हेक्टेयर, फूल ठोस, 300–400 ग्राम के सफेद क्रीम रंग युक्त, पौधे छोटे आकार के तथा फसल अवधि 60–65 दिन होती हैं।

पूसा अश्विनी: अक्टूबर के मध्य में कटाई के लिए तैयार, औसत पैदावार 140–160 क्विंटल/हेक्टेयर, फूल ठोस, 500–600 ग्राम के सफेद हल्के क्रीम रंग युक्त, पौधे आकार में मध्यम तथा 65–70 दिन में फसल तैयार होती हैं।

पूसा कार्तिकी: अक्टूबर के अंतिम सप्ताह में कटाई के लिए तैयार, औसत पैदावार 150–170 क्विंटल/ हेक्टेयर, फूल ठोस, 550–700 ग्राम के और सफेद रंग युक्त, पौधे आकार में मध्यम से बड़े तथा 70–75 दिन में फसल तैयार होती हैं।

पूसा कार्तिक संकर: अगेती फूलगोभी की यह एक संकर प्रजाति है जो अक्टूबर के मध्य में तैयार हो जाती है। इसके फूल बहुत ठोस, 500–600 ग्राम के और सफेद हल्के क्रीम रंग के होते है, पौधे आकार में मध्यम, फसल अवधि 65–75 दिन और औसत पैदावार 140–160 क्विंटल/हेक्टेयर है।

इन किस्मों के बीज की उपलब्धता के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली या राष्ट्रीय बीज निगम के केन्द्रों पर पता किया जा सकता है।

बीज और पौधशाला प्रबंधन:

अगेती फूलगोभी की नर्सरी उगाना एक कठिन कार्य है इसीलिए नर्सरी की देखभाल विशेषरुप से करने की आवश्यकता होती है।

- अगेती फूलगोभी में बीज दर अधिक रखी जाती है क्योकि अंकुरण कम होता है और प्रति हेक्टेयर पौधों की संख्या भी अधिक लगती है। सामान्यतः 500–750 ग्राम बीज से तैयार की गई पौध एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में रोपाई हेतु पर्याप्त होती है।
- अगेती फूलगोभी की पौधशाला पर्याप्त नमीवाले स्थान पर बनानी चाहिए। उचित जलनिकास की व्यवस्था करें। संभव हो तो मृदा जनित बीमारियों से प्रभावित भूमि में पौधशाला न बनायें।
- मई महीने में पौधशाला के लिए चयनित भूमि का प्लास्टिक शीट से ढ़ककर सौलेराइजेशन से भूमि उपचार करें। बुवाई से एक सप्ताह पहले मिट्टी

को केप्टान के 3 ग्रा./ली. पानी के घोल से तर भी करें।

- बुवाई के एक सप्ताह पहले 1 कि.ग्रा. ***ट्राइकोडर्मा वीरीडी*** को 100 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिला कर तैयार करें और इसे नर्सरी बैड में मिलायें। इससे आद्रगलन और मृदा जनित रोगो से बचाव होता है।
- पौध तैयारी के लिए बैड 3.0 – 5.0 मी. लम्बाई में, 45 से.मी. चौड़ाई में तथा 20 – 30 सें.मी. उठी हुई बनाये। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में रोपाई के लिए लगभग 25 से 30 नर्सरी बैड पर्याप्त होती हैं।
- नर्सरी तैयारी के समय प्रत्येक बैड़ में 20–25 कि. ग्रा. अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद मिलायें।
- केप्टान या बाविस्टीन 2 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से या ट्राईकोड्रमा 5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से बीज उपचार करें।
- पौध को सख्त बनाने (हार्डनिंग) हेतु अंतिम 5–6 दिनों में सिंचाई एक दिन के अंतराल पर करें। विशेषरुप सें अगेती फूलगोभी की पौध रोपाई सायःकाल में ही करे।
- रोपाई से पहले पौधों की जड़ों को ट्राइकोडर्मा 10 ग्रा. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 30 मिनट तक डुबायें ताकि रोपाई के बाद आने वाले सड़न रोग से बचाव किया जा सके।

उन्नत सस्य क्रियाएं

- फूलगोभी को अधिक खाद और उर्वरकों की आवश्यकता पड़ती है इसलिए प्रति हेक्टेयर सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट 25 से 30 टन, नत्रजन 120 कि.ग्रा., फास्फोरस 100 कि.ग्रा. और पोटाश 60 कि.ग्रा. की दर से दें।
- गोबर की खाद या कम्पोस्ट की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय रोपाई के तीन सप्ताह पूर्व प्रथम जुताई के दौरान भूमि में मिला दें।
- खेत की अंतिम जुताई के समय नत्रजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा भूमि में अच्छी तरह से मिला दें। शेष नत्रजन को बराबर दो हिस्सो में बांट कर एक हिस्सा रोपाई के एक महीने पश्चात निराई–गुड़ाई के साथ डालें तथा दूसरा हिस्सा फूल बनने की स्थिति में (लगभग 45–50 दिन बाद) मिट्टी चढ़ाते समय मिलाएं। पौधों की बढ़वार कम होने की स्थिति में 2–3 बार 10–15 ग्राम यूरिया प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
- गोभी के फूल में बोरोन की कमी के कारण भूरापन तथा मोलिब्डेनम की कमी के कारण व्हीपटेल की समस्या आती हैं। इनसे बचाव के लिए 1.5 से 2.5 कि.ग्रा. बोरेक्स और 1.0 से 2.0 कि.ग्रा. सोडियम या अमोनियम मोलिबडेट प्रति हेक्टेयर की दर से अन्य उर्वरकों के साथ भूमि में मिलाये।
- गोभी की अगेती फसल की रोपाई के समय वातावरणीय कारक अनुकूल तो नही होते लेकिन अधिक आयु की पौध (5–6 सप्ताह) और उठी हुई मेड़ियों (15–20 सें.मी.) पर रोपाई करने से अच्छी फसल ले सकते हैं।
- अगेती फूलगोभी के पौधे आकार में छोटे से मघ्यम आकार के होते है इसलिए फसल अंतराल कम रखे और प्रति हेक्टेयर अधिक पौधे लगाकर पैदावार बढ़ाये।
- अगेती फूलगोभी के लिए फसल पंक्तियों के बीच 45 सें.मी. एवं पौधो से पौधो के बीच 30 सें. मी. (सिंतबर परिपक्वता समूह) से 45 (अक्टूबर परिपक्वता समूह) सें.मी. रखें। रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिचांई करें। अगेती फसल में रोपाई उपरांत कुछ पौधे मर जाते हैं या पौधे की कोपल क्षतिग्रस्त (ब्लांइडिंग) हो जाती है इस स्थिति में पौधों की उचित संख्या बनाये रखने के लिए 7–10 दिन में पुनः रोपण (गेप फिंलिंग) करें। इसके लिए पौधशाला में कुछ पौधे बचा कर रखने चाहिए।
- बरसात के समय खरपतवार अधिक होते हैं इसलिए 15 दिन के अंतराल पर 3 गुड़ाई करें।
- खरपतवार नियन्त्रण के लिए रोपाई से एक–दो दिन पहले स्टॉम्प 3.3 लीटर या बेसालीन 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव कर हल्की सिंचाई करें।

- रोपाई के 30 दिन बाद मिट्टी चढ़ाने से फसल की बढ़वार अच्छी होती है एवं पैदावार बढ़ती है।
- अगेती फसल में सिंचाई रोपाई के तुरन्त बाद् तथा उसके पश्चात साप्ताहिक अन्तराल पर आवश्यकता अनुसार करें।

कटाई और विपणन

जब गोभी के फूल प्रजाति के अनुसार उचित आकार के हो जाये और ठोस अवस्था के रहते ही काट लेना चाहिए। गोभी के फूलों को ठूंठ के साथ काटे क्योंकि यह और बाहरी पत्तियां परिवहन के दौरान फूलों को सुरक्षित रखती है। कटाई में देरी से फूल पीले और ढ़ीले हो जाते हैं जिनका विपणन मुश्किल और बाजार भाव बहुत कम मिलता है। कटाई उपरांत फूलों को बाजार के लिए तैयार करते समय केवल बाहर वाले बड़े पत्तों को ही हटाएं। इससे फूलों की गुणवत्ता बनी रहेगी।

- सभी फूल एक साथ तैयार नहीं होते है अतः 2–4 दिन के अंतराल पर कटाई करे। कटाई के बाद फूलों को रंग, सुगठता व आकार के आधार पर श्रेणीकृत करें।
- अगेती फूलगोभी की पैदावार मध्य और पछेती समूह की अपेक्षा कम होती है लेकिन बाजार भाव अधिक होता है इसलिए किसान इसकी खेती से अच्छी आमदनी ले सकते हैं।
- औसतन 12–15 टन प्रति हेक्टेयर पैदावार इस फसल से हो जाती है।
- फूलगोभी में विवर्णीकरण (ब्लांचिग) से फूल सफेद व आकर्षक बनते हैं। इसके लिए जब फूल मध्यम से ज्यादा आकार के हो जाए तो उसे पास के बड़े पत्तो को रबर या रस्सी से बांधकर ढ़क दें और 7–10 दिन बाद फूलों की कटाई करें।
- अगेती फूलगोभी की खेती करके किसान औसतन 60,000 से 80,000 रुपये प्रति हेक्टेयर मात्र तीन महीने में उचित फसल प्रबंधन और उचित बाजार भाव मिलने पर कमा सकते हैं।

प्रमुख रोग एवं कीट प्रबन्धन

- कटुवा इल्ली गोभी के पौधों को रात्रिकाल में नुकसान पहुंचाती है। इसके नियंत्रण हेतु प्रकाश प्रपंच का प्रयोग व्यस्क शलभों को पकड़ने के लिए करें तथा फोरेट 10जी 10 कि.ग्रा./है. की दर से अंतिम जुताई के समय मिलाए।
- हीरक पृष्ठ पतंगा गोभी में 50–60% तक नुकसान पहुंचाता है जो पत्तियों की निचली सहत पर छोटे– छोटे छिद्र बना देता है। इसके नियंत्रण हेतु गोभी की प्रत्येक 25 कतारों के बाद दो कतार जाल फसल (ट्रेप क्रॉप) सरसों की लगावें। स्पा. इनोसिड (25 एस.सी.) 3.0 मि.ली. प्रति 10 लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
- तंम्बाकु की सुण्डी छोटी अवस्था में पत्तों को खुरच कर खाती है तथा बड़ी अवस्था में गोल–गोल काट कर खाती है। इसके नियंत्रण हेतु अण्डे के समूह को एकत्र कर नष्ट करें। एन.पी.वी. 250 एम.ई./है. की दर से छिड़काव करें एवं मेलाथियान 2.0 मि.ली./ली. के हिसाब से पानी में मिलाकर छि. ड़काव करें।
- आर्द्रगलन रोग का प्रकोप नर्सरी अवस्था में अत्यधिक होता है। इसके नियंत्रण हेतु बीजों की बुवाई से पूर्व 3 ग्राम थीरम या केप्टान प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें।
- काला सड़न के कारण पत्तियों के बाहरी किनारों पर 'V' आकार के हरिमाहीन एवं पानी में भीगे जैसे धब्बे दिखाई देते है। इसके नियंत्रण हेतु बीजों की बुवाई से पूर्व स्टेप्टोसाइक्लिन 250 मि. ग्रा. या बॉविस्टन 1 ग्रा./ली. पानी के घोल में 2 घंटे उपचारित कर छाया में सुखाकर बुवाई करें।
- अल्टरनेरिया धब्बा रोग से पत्तियों पर गोल आकार के छोटे से बड़े भूरे वलयाकार धब्बे बन जाते हैं। अंत में धब्बे काले पड़ जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु मेंकोजेब 2 ग्रा./ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- कभी–कभार फूलगोभी की सतह ढ़ीली व मखमली हो जाती है। इसके नियंत्रण हेतु नत्रजन की अनुशंसित मात्रा ही डालें एवं उपयुक्त किस्म का चयन कर सही समय पर लगावें।

भंडारित अनाज के कीट एवं उनका प्रबंधन

रोहित राणा, एस. चक्रवर्ती, जे. पी. एस. डबास एवं निशी शर्मा
कृषि प्रौद्योगिकी आंकलन एवं स्थानांतरण केंद्र, भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत में, अनाज की कुल उपज का 70 प्रतिशत हिस्सा स्वयं किसानों द्वारा भंडारण/जमा किया जाता है और 30 प्रतिशत हिस्सा सरकार द्वारा विभिन योजनाओं के माध्यम से सार्वजनिक वितरण के लिए अथवा व्यापारियों व मिल मालिकों द्वारा खरीदा एवं भंडारण/जमा किया जाता है। वर्ल्ड बैंक के अनुसार, भारत में प्रत्येक वर्ष 12–16 मेट्रिक टन अनाज फसल कटाई के उपरांत खराब हो जाता है, जो कि देष की 1/3 गरीब जनसंख्या के खाने की आपूर्ति कर सकता है। भंडारित अनाज में लगभग 1000 प्रजाति के कीट हानि पहुंचाते हैं। जबकि इनमें से एक दर्जन कीट फसल कटाई के उपरांत बीज एवं अनाज को अधिक क्षति पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा आर्थिक रूप से ज्यादा महत्व रखते हैं। इनमें से कुछ कीट ऐसे भी है जो पहले खेत में नुकसान पहुंचाते हैं और बाद में भंडारण के दौरान अधिक नुकसान पहुचाने वाले कीटों की श्रेणी में आते हैं। भंडारण में नुकसान करने वाले कीट न केवल अनाज/बीज को खाकर क्षति करते अपितु इनके द्वारा दूषित अनाज (मलमूत्र मिले होने की वजह) मानव उपभोग के योग्य नही रहता है।

पर्यावरणीय कारक जैसे– भंडारण गृह की संरचना, तापमान व नमी इत्यादि अनाज को भंडारण के दौरान प्रभावित करते हैं। किसान भंडारण के लिए अभी भी पुरानी विधियों का इस्तेमाल करता है जैसे कि ड्रम, ढेर लगाकर, मिट्टी के बर्तन, कोठी, उतरानी और टाट के बोरे इत्यादि तथा भंडारण संरचनाओं के निर्माण में प्रयोग होने वाली सामाग्री बाँस, पत्थर, मिट्टी, पेड़ एवं पौधों के अवशेष न तो चुंहो के प्रकोप को रोक पाते और न ही फफूंद एवं कीटों के नुकसान को। ऐसे भंडारण ढांचों में औसतन 6 : खाद्यान्न की हानि हो जाती हैं। बहुत सारे कारण भंडारित अनाज को नुकसान करते हैं जैसे कीट 2.0–4.2 %, चुंहें 2.5%, पक्षी 0.85 % और नमी 0.68%। सुरक्षित भंडारण के लिए यह अति आवश्यक है कि हमें कीटों के प्रकार व ये कीट किस प्रकार नुकसान पहुचाते हैं और उनके प्रबंधन का ज्ञान हो।

भंडारण के दौरान नुकसान पहुचाने वाले कीटों को दो वर्गो में वर्गीकृत किया गया है

1. प्राथमिक भंडारण कीट
2. द्वितियक (गौण) भंडारण कीट

1. प्राथमिक भंडारण कीटः ऐसे कीट जो साबुत बीज/अनाज की सतह को तोड़कर/काटकर सर्वप्रथम क्षति पहुचाते हैं या क्षति पहुचाने में सक्षम होते हैं। ऐसे कीट प्राथमिक भंडारण कीट कहलाते हैं। ये भी दो प्रकार के होते हैं।

क. आंतरिक खाने वाले कीट

जैसे :

चावल का घुन (सीटोफिलस ऑरीजा)
छोटा दाना भेदक (राइजोपरथा डोमिनिका)
दाल का भ्रंग (कैलोसोब्रुकस चाईनेनसिस)
आलू कंद का कीट (थोरीमियाऑपारक्यूलेला)

ख. बाहरी खाने वाले कीट

जैसे :

भूरा–लाल घुन (ट्राइबोलियम कैस्टानियम)
चावल की पंखी (कोरसायरा सैफैलोनिका)
खपरा बीटल (ट्रोगोडरमा ग्रेनेरियम)

2. द्वितियक (गौण) भंडारण कीट : ऐसे कीट जो कि टूटे हुए या चूर्ण बने हुए या पहले से ही कीट द्वारा क्षतिग्रस्त अनाज को खाते हैं गौण भंडारण कीट कहलाते हैं। इस श्रेणी में निम्नलिखित प्रमुख कीट आते हैंः

आरी समान दाँतेदार अनाज का भ्रंग (ओराईजाफिलिस सूरीनामेन्सिस)

लंबे सिर वाला आटे का भ्रंग (लिथोटिकस ओराइजा)

1. प्राथमिक भंडारण कीट

क. आंतरिक खाने वाले कीट

चावल का घुन :

पूर्ण विकसित लार्वा 5 मि0 मी0 लंबा, मांसल और टांगहीन होता है। वयस्क लाल भूरे रंग का, बेलनकार तथा 3 मि0 मी0 लंबा होता है। इनकी चोंच पतली और घुमावदार होती है। पंख के खोल पर चार हल्के लाल या पीले रंग के निशान होते हैं।

यह कीट गर्म देशों में अधिक पाया जाता है, जहां यह लगातार प्रजनन कर सकता है और असुरक्षित अनाज/बीज को नष्ट कर देता है। वयस्क और ग्रब दोनों नुकसान पहुचाते है। ये अनियमित छेद करते है और अनाज के अंदर खाते एवं रहते हैं। जिसके कारण दाने खाने एवं बोने के योग्य नहीं रहते। इस कीट के आक्रमण से धान, गेहूँ, मक्का, ज्वार, इत्यादि खाधान्न खोखले हो जाते हैं।

छोटा दाना भेदक :

पूर्ण विकसित लार्वा 3 मि0 मी0 संकुचित लंबा, सिर मटमैला सफेद तथा शरीर हल्के भूरे रंग का होता है। वयस्क एक छोटी बेलनाकार बीटल है जिसकी लंबाई लगभग 3 मि0 मी0 और चौड़ाई 1 मि0 मी0 से भी कम होती है और ये गहरे लाल भूरे रंग के होते हैं। दोनों लिंगों, नर एवं मादा की ब्राहय आकृति एक समान होती है। वयस्क उड़ने में सक्षम हैं, एक जगह से दूसरी जगह जा सकते हैं, और लंबे समय तक अनाज/बीज में रहते हैं। मादाएं एक समय में एक या 30 तक अंडे देती हैं। इसका लार्वा अनाज के अंदर प्युपा बनाता है। कीट के विकास के लिए उपयुक्त तापमान 34 सेल्सियस है और यदि तापमान 34 सेल्सियस और अनाज में 14 % नमी हो तो कीट की जनसंख्या 20 % बढ़ जाती है। उपयुक्त तापमान एवं नमी होने पर यह कीट अत्यधिक नुकसान पहुंचाता है।

ये कीट मुख्यतः गेहूं, मक्का, चावल और बाजरे को खाते हैं। वयस्क और लार्वा दोनों अनियमित आकार के छेद करते हैं। जब इनका आक्रमण अधिक होता है तो क्षतिग्रस्त अनाज/बीज चबाये हुआ अनाज के पाउडर से भर जाता है।

दाल का भृंग :

इसका लार्वा हल्के भूरे रंग के सिर के साथ सफेद रंग का होता है। प्रोढ़ भृंग 3–4 मि0 मी0 लंबा, चॉक्लेट या गहरा लाल भूरे रंग का होता है तथा शरीर महीन बालो से ढाका हुआ होता है।

कीट मुख्यतः मूंग, उर्द, चना, अरहर, मसूर तथा अन्य दालों पर क्षति पहुँचाता है। इनकी कई प्रजातियाँ पाई जाती है। इस कीट का प्रकोप खेत में हो जाता है। मादा कीट अपने अण्डे हरी फलियों में देती है। जिसके बाद भृंग दानों के अंदर छेद करके घुस जाती है तथा छेद को बंद कर देती है। फसल काटने के बाद ये कीट खेत से गोदामों में पहुँच जाते हैं। ये साल भर सक्रिय रहते हैं, लेकिन जुलाई से सितंबर तक अनुकूल तापमान एवं आद्रता (तापमान 30 डिग्री सेल्सियस और सापेक्षिक आर्द्रता 70:) होने पर ये कीट अधिक क्षति पहुंचाते हैं। ये कीट 20–40 दिनों में अपने जीवन चक्र को पूरा करते हैं और भंडारण में अनाज/बीज को भरी क्षति पहुंचाते हैं।

आलू कंद का कीट :

इस कीट का लार्वा हल्के हरे रंग का होता है। प्रोढ़ का शरीर संकीर्ण, चमकीलेदृधूसर रंग का तथा हल्के भूरे रंग के पंख लिए होता है। जिनमें छोटे काले धब्बे होते हैं।

यह कीट रात्रिचर है और ज्यादातर प्रकाश की ओर आकर्शित होता है। जब आलू/कंद खेत में होते है तो इसका लार्वा आलू में छेद करके घुस जाता है और शीतगृह में पहुँच जाता है। ये कीट प्रवेश छेद को बंद कर देता है। जो कि संक्रमित आलू पर काले रंग की रेखा के रूप मे दिखाई देता है। भारत में ये कीट 30–70 % तक नुकसान करता है। ये कीट खेत में आलू खोदने से पहले और भंडारण के समय भारी क्षति पहुंचाता है।

ख. बाहरी खाने वाले कीट

भूरा–लाल घुन :

प्रौढ़ कीट का शरीर चपटा, लाल भूरे रंग का तथा 3–4 मि0 मी0 लंबा होता है। इसके एंटीना अच्छी तरह से विकसित होते हैं। सिर और वक्ष के ऊपरी हिस्से मे छोटे छोटे छिद्र होते हैं। जब अनुकूल तापमान होता है तो यह कीट 7–12 सप्ताह में अपना जीवन चक्र पूरा करता

है इसके लिए उपयुक्त तापमान 35 डिग्री सेल्सियस और सापेक्ष आर्द्रता 60–80 % है। यह कीट उडकर पूरे गोदाम में फैल सकता है।

ये सभी प्रकार के धान्यों, आटा, स्टार्च वाली वस्तुए, मटर, सुपारी, बादाम आदि गिरि वाली वस्तुओ, काली मिर्च तथा भंडारित अनाज को नुकसान करते हैं। इस कीट का लार्वा एवं वयस्क दोनों हानि पहुचाते हैं। लार्वा हमेशा खाद्य पदार्थ मे छुपे हुए पाये जाते हैं। ये गर्म और अधिक आद्रता वाले मौसम में सबसे अधिक नुकसान करते हैं। कीट अनाज/बीज को आर्थिक नुकसान करते हैं जैसे कि वजन में कमी, उत्पाद कि गुणवत्ता, क्षति ग्रस्त अनाज/बीज के बाजार मूल्य में कमी और दुर्गंध इत्यादि। अनाज/बीज में कीट की उपस्थिती होने से एलर्जी प्रतिक्रिया भी पैदा हो सकती है।

चावल की पंखी :

इस कीट का लार्वा 12–15 मि0 मी0 लम्बा, भूरा–सफेद एवं सिर हल्के लाल–भूरे रंग का होता है। अण्डे से निकलते ही लार्वा दानो को खाना प्रारम्भ कर देता है। इस कीट के ऊपरी पंख का रंग धूसर एवं फैलाव 25 मि0 मी0 होता है। पंख शरीर पर छतनुमा रहते है। कीट की वृद्धि के लिए उपयुक्त तापमान 28–32 डिग्री सेल्सियस होता है।

यह कीट गेहूं, जों, ज्वार, चावल, दाले, तिलहन, सूखे फल, मसाला व सब्जियों के बीज एवं उनके उत्पाद को क्षति पहुंचाता है। किन्तु चावल एवं ज्वार पर अत्यधिक नुकसान करता है। इस कीट का केवल लार्वा हानि पहुंचाता है और अनाज व जाल (वेब) से ढेले बनाकर उसके अन्दर खाता है।

खपरा बीटल :

इस भृंग का गेहूँ पर अधिक प्रकोप होता है। इसके लार्वा के मजबूत मुखांग पहले अंकुर भाग को खाते है और फिर अन्य भाग को क्षति पहुँचाते हैं। ये ज्यादातर सतह से 25–45 से0 मी0 गहराई तक ही नुकसान करते हैं। गर्म एवं आद्र परिस्थितियों में कीट का विकास बहुत तेजी से होता है 32–430 सेल्सियस तापमान एवं 73 % आद्रता इस कीट के लिए बहुत अनुकूल है। बिना भोजन के इस कीट का लार्वा 9 महीने तक जीवित रह सकता है और भोजन की उपस्थिती में ये 6 वर्षो तक जीवित रहते है।

2. द्वितियक (गौण) भंडारण कीट

आरी समान दाँतेदार अनाज का भृंग :

लार्वा भूरे रंग के सिर के साथ पीले–श्वेत होते हैं और पूर्ण रूप से विकसित लार्वा आमतौर पर 1/8 इंच लंबाई से कम होता है। वही भृंग छोटा, सक्रिय, भूरा एवं 1/10 इंच लंबा होता है। इसके वक्ष के प्रत्येक साइड पर छह दांते समान उभार होते हैं जिसके कारण इसे आरी समान दाँतेदार भृंग कहते हैं। इस कीट को 18–37 डिग्री सेल्सियस पर अपना जीवन चक्र पूरा करने में 20–80 दिनों की आवश्यकता होती है इसका कीट का वयस्क 6–10 महीने तक जीवित रह सकता है। ये कीट केवल गर्म मौसम में ही उड़ते हैं और दूषित अनाज/बीज की तलाश में काफी लंबी दूरी तय करते हैं।

आरी समान दाँतेदार अनाज का भृंग घर में अनाज उत्पादों को प्रभावित करने वाले सबसे आम कीड़ों में से एक है। इसका वयस्क और लार्वा दोनों सब्जियों के मूल, खासकर अनाज और अनाज उत्पादों जैसे आटा, पास्ता उत्पादों, अनाज, बादाम, कैंडीज, सूखे फल, खमीर, तम्बाकू, और सूखे मीट के खाद्य पदार्थों में क्षति पहुचाते हैं।

लंबे सिर वाला आटे का भ्रंग :

लार्वा के सिर का आवरण काले रंग का तथा शरीर पीले क्रीम रंग का होता है। वयस्क पतला, चपटा, पीला भूरे रंग का, 3 मि0 मी0 लंबा होता है। मादा अनाज/बीज में अनियमित ढंग से अण्डे देती है और लार्वा सक्रिय रूप से अनाज/बीज में घूमते एवं क्षति पहुँचाते हैं। इस भृंग के विकास के लिए एक बहुत ही उच्च न्यूनतम तापमान 25व सेल्सियस चाहिए। वयस्क एवं ग्रब दोनों मील उत्पादों पर खाते हैं यह संग्रहित अनाज में द्वितियक संक्रमण के रूप में होता है। यह कीट आटा, पैक किए गए भोजन, चावल और चावल उत्पादों पर क्षति पहुंचाता है।

एकीक्रत नाशीजीव प्रबंधन

यदि हम कीटों की रोकथाम अलग–अलग समय पर अलग–अलग प्रकार से करें तो हम कीटों द्वारा होने वाले नुकसान को रोक सकते हैं। नीचे दिये गए प्रबंधन किसान अपनाकर भंडारण में होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम कर सकता है।

भंडारित अनाज में कीटों का प्रबंधन मुख्यतः 3 भागो में बंटा होता है।

1 भंडारण से पूर्व ध्यान देने योग्य बातें

2 भंडारण सामान व गोदाम की सफाई

3 भंडारित अनाज का उपचार

भंडारण से पूर्व ध्यान देने योग्य बातें

- हमेशा बीज/अनाज को भंडारित करने से पहले धूप में सुखाना चाहिए जिससे उसमें 10% से कम नमी हो जाए और कीटो के लार्वा एवं अंडे भी मर जाए।
- नम वातावरण कीट और फफूंदी के विकास के लिए अनुकूल होती है इसीलिए बीज/अनाज को अच्छे वायु संचार वाले गोदाम में रखना चाहिए जो कि गोदाम में नमी बढ़ने से रोकता है।
- गोदाम के फर्श एवं दीवारों की दरारों और छेदों को अच्छे से मिट्टी का लेप लगाकर या सिमेंट से भर देना चाहिए।
- नये अनाज को साफ गोदाम या पात्र धारक/बिन में ही संग्रहित करना चाहिए।
- यदि भंडारण गोदाम में कर रहे हैं तो कभी भी पुराने बीज या अनाज के साथ नये बीज या अनाज को नहीं रखना चाहिए।
- यदि अनाज को खुले ढेरी लगा कर रखना है तो बड़ी ढेरी लगानी चाहिए क्योंकि छोटी ढेरी में क्षति ज्यादा होती है।
- बीज भरी बोरियों को लकड़ी की चोकियों अथवा 1000 गेज की पॉलीथीन चादर पर रखना चाहिए ताकि उनमें नमी का प्रवेश न हो सके।

भंडारण सामान व गोदाम की सफाई

- पुराने बोरों को साइपरमेथरिन 25 ई.सी. / 0.0125 के घोल में डूबाकर कीट मुक्त कर लेना चाहिए।
- खाली गोदाम या पात्र धारक/बिन में मेलाथियान 50% ई.सी./0.05 के घोल का छिड़काव अनाज भंडारण करने से पहले करना चाहिए।

भंडारित अनाज का उपचार

- भंडारण का समय–समय पर निरीक्षण करना चाहिए और यदि कीट दिखाई दें तो भंडार को हटाकर सुखाना चाहिए और साफ करना चाहिए।
- भंडारण में बल्ब/लाइट ट्रेप लगा दे तो चावल कि पंखी के प्रजनन क्षमता कम हो जाती है।
- यदि गोदाम में कार्बन डाई ऑक्साइड कि मात्रा बढ़ा दे तो कीट ऑक्सिजन के अभाव से मर जाते हैं। ड्राई–आईस (ठोस कार्बन) बजार में आसानी से मिल जाती है जिनका प्रयोग करके गोदाम में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ा सकते हैं।
- धान को भंडार करने से पहले उसमें जंगली तुलसी/बेल/बेगोनिया के सूखे पत्तों का पाउडर/1 प्रतिशत w/w (1 ग्राम पाउडर एवं 99 ग्राम जल मिलकर 1 % w/w विलयन बनाते हैं अर्थात 1 ग्राम पाउडर 100 ग्राम जलीय विलियन में उपस्थित हैं) मिलाना चाहिए।
- नीम की सुखी पत्तियों को अनाज मे मिलाकर बिन में रखने से कीट प्रकोप कम हो जाता है।
- दालों (उर्द व मूंग) में सरसों का तेल मलने पर दाल की भृंग उपचरित दाल में अंडे नहीं दे पाती।
- ज्यादा संक्रमण होने पर एल्युमिनियम फॉसफाइड (सलफॉस) 3 गोली/टन का प्रयोग कीट रोकथाम के लिए करना चाहिए।

आधुनिक तकनिक से करें भरपूर फल उत्पादन

संजय कुमार सिंह, महेन्द्र कुमार वर्मा एवं अमित कुमार गोस्वामी
फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

भारत विश्व में फल उत्पादन की दृष्टि से दूसरा स्थान रखता है। परन्तु दिन–प्रतिदिन शहरीकरण की वजह से कृषि के अंतर्गत क्षेत्रफल कम होता जा रहा है और कम क्षेत्रफल से अधिक उत्पादन की आवश्यकता महसूस की जा रही है। पहले ज्यादातर फल वृक्षों को अधिक दूरी पर लगाया जाता था। परन्तु अब कृषि योग्य भूमि की कमी तथा अधिक उत्पादन की मांग को देखते हुए उच्च घनत्व रोपण अर्थात सघन बागवानी की आवश्यकता महसूस की जा रही हैं। आज विभिन्न फल वृक्षों जैसे आम, केला, लीची, पपीता, अंगूर, अमरुद, नींबूवर्गीय फल, सेब इत्यादि में उच्च घनत्व रोपण किया जा रहा है।

फलदार वृक्षों की बागवानी सफलतापूर्वक करने हेतु संबंधित ज्ञान के साथ–साथ निपुणता एवं लगन की भी आवश्यकता होती है। बागवानी एक लम्बे समय का निवेश है और सुदृढ़ योजना बनाकर ही बागवानी व्यवसाय शुरू करना चाहिए। शुरूआती दिनों में किए गए गलत निर्णयों का दुष्प्रभाव लम्बे समय तक बना रहता है। चूंकि फलवृक्ष दीर्घकालीन होते हैं अतः बाग लगाने की योजना बनाने के पहले निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए जैसे स्थान का चुनाव, मिट्टी एवं जलवायु को ध्यान में रखकर फल विशेष एवं किस्मों का चुनाव, जल की उपलब्धि एवं गुणवत्ता, कम उपजाऊ एवं खराब जमीन है तो मिट्टी की दसा सुधारना, वायुरोधी वृक्षों का चुनाव एवं रोपण, आवारा जानवरों से बचाव का उपाय, उद्यान के अन्दर भवन, रास्ते, सिंचाई की नालियां इत्यादि बनाना, फलवृक्षों का रेखांकन करना इत्यादि ।

स्थान का चुनावः जहां तक संभव हो नए बाग ऐसे क्षेत्र में लगाना चाहिए जहां पर फलवृक्षों की बागवानी पहले से ही की जाती रही हो। ऐसे क्षेत्रों में बागवानी संबंधित जानकारी तथा आवश्यक चीजों की उपलब्धता आसान से होती है। साथ ही साथ इस बात का भी ध्यान रखे कि बाग बाजार एवं प्रसंस्करण यूनिटों के नजदीक हो और समय से फल बाजार एवं प्रसंस्करण यूनिटों में भेजे जा सके जिससे कटाई उपरांत नुकसान कम से कम हो।

जलवायु एवं मिट्टीः जिस क्षेत्र में बाग लगाने की योजना बनी हो वहां की भूमि एवं जलवायु का फलदार वृक्षों के चयन में महत्व होता है। कुछ फल केवल शीतोष्ण जलवायु में अच्छे पनपते है और कुछ उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में अच्छी फलत देते हैं। ध्यान रखें कि ऐसे स्थान जहां पाला जाड़े के महीनों में पड़ता हो पपीते की खेती लाभकारी नहीं होती है। शीतोष्ण जलवायु में सेब, नाशपाती, खुबानी, चेरी, आलूबुखारा, आड़ू, अंगूर, स्ट्राबेरी इत्यादि एवं उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में अनानास, केला, संतरा, मौसम्बी, ग्रेपफ्रूट, चकोतरा, नींबू, आम, अंगूर, अनार, पपीता, लोकाट, शरीफा, अमरूद, लीची, चीकू, बेर, कटहल, बेल इत्यादि की उत्तम बागवानी की जा सकती है ।

भूमि का चयन भी बागवानी में महत्वपूर्ण होता है। जहां तक संभव हो गहरी दोमट जीवांषयुक्त मिट्टी जिसका पी. एच. मान 5.5–7.5 के बीच हो और जल भराव की समस्या न हो बागवानी हेतु सर्वोत्तम मानी जाती है। इसके साथ–साथ भूमि में लवण की अधिकता होने पर भी पौधों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लवणीय एवं क्षारीय भूमि में सभी फलवृक्ष नहीं लगाएं जा सकते, परन्तु बेर, अमरूद, आंवला, बेल, फालसा आदि फलवृक्ष लवण सहनशील होते हैं। इस तथ्य की संस्तुति की जाती है कि नए बाग लगाने से पहले मिट्टी की जांच अवश्य करा लेनी चाहिए।

सिंचाई की सुविधा एवं जल गुणवत्ताः नवीन बाग लगाने से पहले सिंचाई के स्रोतों पर विचार कर लेना चाहिए। इसके साथ–साथ जल की गुणवत्ता भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्षारीय अथवा लवणयुक्त जल फलवृक्षों के विकास एवं उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। बाग लगाने से पहले सिंचाई स्रोतों के जल की जांच अवश्य करा लेनी

चाहिए। जल की विद्युत चालकता यदि 1.5 के. एम. से कम है तो वह फलदार वृक्षों के लिए उपयुक्त होता है। परन्तु विद्युत चालकता अधिक होने (>2.0 के. एम.) पौधों पर दुष्प्रभाव पड़ता है। आजकल ड्रिप सिंचाई पद्धित का प्रयोग बागवानी फसलों में होने लगा है। इस सिंचाई प्रणाली को अपनाने से जल की बचत होती है साथ ही साथ पौधों का विकास एवं उत्पादकता भी बढ़ती है।

फलदार वृक्षों की किस्मों का चुनावः नये बाग लगाने से पहले इस बात पर भी गौर करना चाहिए कि किस विशेष फलवृक्ष की बागवानी करनी है तथा उस फल विशेष की कौन–कौन सी किस्में उस जलवायु हेतु अच्छी है। कुछ फलदार वृक्षों में अच्छी एवं नवीन किस्मों का विवरण नीचे सारणी में दिया गया है।

फल	किस्म
आम	दशहरी, लंगड़ा, चौसा, बाम्बे ग्रीन, रटौल, गौरजीत, आम्रपाली, मलिल्का, पूसा अरूणिमा, पूसा सूर्या, दशहरी–51, रामकेला, अम्बिका, अरूणिका।
अंगूर	पूसा उर्वशी, पूसा नवरंग, परलेट, पूसा सीडलेस, फ्लेम सीडलेस।
अमरूद	इलाहाबाद सफेदा, लखनऊ–49, ललित, श्वेता, पन्त प्रभात, अर्का अमूल्य, अर्का मृदला, इलाहाबाद सुर्खा।
पपीता	पूसा मैजेस्टी, पूसा ड्रवार्फ, पूसा नन्हा, सूर्या रेड लेडी, सिन्टा इत्यादि।
बेर	बनारसी कड़ाका, उमरान, गोला, थार भूवराज पोंडा।
आंवला	नरेन्द्र आंवला, कृष्णा, कंचन एन. ए. 7, एन. ए. 5।
नींबू	पन्त लेमन, कागजी कलां, प्रमालिनी, विक्रम, सांई सरबती, पूसा अभिनव, पूसा उदित

रेखांकनः फलदार वृक्षों को अच्छी तरह विकसित करने के लिए रेखांकन करना नितांत आवश्यक है। सही तरह से रेखांकन करने से बाग में कृषि क्रियाएं अच्छी तरह से की जा सकती है और पौधों को पर्याप्त सूर्य की रोशनी भी मिलती हैं।

रेखांकन विधियां

(क) आयताकार विधिः रेखांकन की इस विधि में पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी, पौधों से पौधों के बीच की दूरी की अपेक्षा अधिक रखते हैं।

(ख) वर्गाकार विधिः यह विधि फलदार वृक्षों के रेखांकन हेतु सर्वाधिक अपनाई जाती है। इस विधि में पौधों का रोपण वर्ग के चारों कोनों पर करते हैं। पौधों एवं पंक्तियों की बीच की दूरी समान होती है। यह अत्यन्त सरल रेखांकन विधि है जिसमें कृषि क्रियाएं एवं सिंचाई इत्यादि सुलभ तरीके से की जा सकती है।

(ग) पूरक विधिः यह विधि वर्गाकार रेखांकन विधि की तरह ही है अन्तर केवल इतना है कि वर्ग के केन्द्र में एक अतिरिक्त पौधा लगाया जाता है।

(घ) बाड़ (हेज) पंक्ति विधिः यह विधि अपेक्षाकृत नई रेखांकन विधि है। इस विधि में पौधे से पौधों के बीच की दूरी, पंक्तियों के बीच की दूरी की अपेक्षा आधी अथवा एक तिहाई रखी जाती है। पौधों के बीच की दूरी अत्यन्त कम होने से पौधे बाड़ की तरह प्रतीत होते है। साथ ही साथ पंक्तियों के बीच की दूरी अपेक्षाकृत अधिक होती है।

वृक्षारोपणः बाग लगाने से पहले खेत को गहरा जोतकर समतल कर लेना चाहिए। इसके बाद जितनी दूरी पर पौधा लगाना है उतनी दूरी पर 1 X 1 X 1 मीटर के गड्ढ़े मई–जून माह में खोद लेना चाहिए। गड्ढ़ों से निकली मिट्टी में लगभग 50 किग्रा. अच्छी तरह से सड़ी गोबर की खाद मिला देनी चाहिए। इन गड्ढ़ों में पौध लगाने के 15–20 दिन पूर्व गोबर एवं मिट्टी से भर दिया जाता है। दीमक की समस्या हो तो 100 ग्राम क्लोरपायरीफॉस प्रति गड्ढ़े की दर से मिट्टी में मिला देना चाहिए। गड्ढ़े भरते समय मिट्टी को अच्छी तरह दबाते हैं और सतह से 15–20 सेमी– ऊपर तक भरते हैं। यदि गड्ढ़ा भरने के

बाद वर्षा न हो तो एक सिंचाई करना आवश्यक हैं, जिससे गड्ढ़ों की मिट्टी बैठ जाए। पौधों को लगाने के लिए पूरे देश में वर्षा ऋतु सबसे उपयुक्त मानी गई है क्योंकि इन दिनों वातावरण में पर्याप्त नमी होती है। ऐसे क्षेत्र जहां पर वर्षा अधिक होती है पौध लगाने का कार्य वर्षा के अन्त में जहां वर्षा कम होती है वहां वर्षाकाल के प्रारम्भ में करनी चाहिए। जिससे पौधे अच्छी तरह स्थापित हो सकें। पेड़ लगाने का सबसे अच्छा समय सायंकाल होता है। दिन की गर्मी में पौधे मुरझा जाते हैं। यदि आसमान बादलों से ढ़का हौ तो दिन के समय भी पौधे लगाए जा सकते हैं।

पौध रोपण के पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधे कहां से एवं किस प्रकार के लिए जाएं। नर्सरी में पौधे कलम या चश्मा प्रवर्धन प्रक्रिया के बाद कम से कम 9 महीने तक रखे हों। उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु के पौधे साधारणतः मानसून में (जुलाई–अगस्त) में लगाएं जाते हैं। जबकि पर्णपत्ती पहाड़ी फलदार पौधों को शीतऋ तु (जनवरी) में लगाना चाहिए। पौध रोपण के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहि,।

1–पौध लगाने के ठीक पहले लिपटी हुई घास एवं टाट अथवा पॉलीथीन को मिट्टी की पिण्डी से अलग कर देना चाहिए।

2–गड्ढे के केन्द्र से केवल उतनी ही मिट्टी निकालनी चाहिए जिसमें मिट्टी की पिण्डी के साथ पौधे की जड़ सरलतापूर्वक बैठ जाए।

3–पौध लगाने के बाद मिट्टी को चारों तरफ से जड़ों के आसपास दबा देना चाहि,। ध्यान रखें कि पौधा जमीन तह से नीचे न बैठ जाएं।

4–पौध रोपण के तुरन्त बाद पौधों को पानी देना अति आवश्यक होता है।

5–शुरूआती दिनों में पौधों को किसी लकड़ी या बांस का सहारा देना ठीक होता है।

पौधों के बीच की दूरी किस्मों, भूमि के उपजाऊपन तथा वातावरण पर निर्भर करती है। जो किस्में अधिक फैलने वाली होती है उनके लिए अधिक स्थान की आवश्यकता होती है। उदाहरण के तौर पर आम की ओजस्वी किस्मों जैसे लंगड़ा एवं चौसा को 10–12 x 10–12 मीटर पर लगाना ठीक रहता है। आम्रपाली जो एक बौनी किस्म है और 2.5 x 2.5 मीटर की दूरी पर लगाई जा सकती है। बाग लगाने के लिए पौधशाला से लाए जाने वाले पौधों को मिट्टी समेत चारों ओर से अच्छी तरह खोदकर निकालना चाहिए जिससे जड़ों को कम से कम नुकसान पहुंचे। पौधों को पूर्व चिन्हित गड्ढ़ों के बीचों बीच पिण्डी के बराबर गड्ढ़ा खोदकर उसमें रोपित कर देना चाहिए तथा आसपास की मिट्टी को अच्छी तरह दबा देना चाहिए। पौध लगाने के बाद उसके चारों ओर सिंचाई के लिए 60 सेमी. व्यास का थाला बना देना चाहिए। वर्गाकार विधि एक अच्छी रोपण विधि है जिसमें सिंचाई एवं अन्य कृषि क्रियाएं आसानी से की जा सकती है।

वायुरोधक वृक्षों का प्रबंधनः गर्म एवं सर्द तेज हवा चलने से पौधों को नुकसान पहुंचता है। साथ ही साथ सामान्य वातावरण में भी तेज हवा चलने से फल गिर जाते हैं और शाखाएं टूट सकती है। इससे बचाव हेतु वायुरोधक वृक्षों का रोपण अति आवस्यक होता है। इसके लिए जामुन, बीजू आम, सफेदा, कमरख आदि के पेड़ अच्छे पाएं गए हैं।

पोषक तत्व प्रबंधनः एक आदर्श बाग की स्थापना में पोषण प्रबंधन का बड़ा महत्व होता है। पौधों की बढ़वार के लिए पोषक तत्वों की आवस्यक होती है। ये पोषक तत्व आमतौर पर पौधों को मिट्टी से प्राप्त होते हैं। इसलिए पौधों की समुचित विकास के लिए सभी पोषक तत्वों का मिट्टी में होना आवश्यक है। फलवृक्ष लगाने के पहले यह आवश्यक है कि मिट्टी का पी.एच. मान, कार्बनिक पदार्थ तथा उपलब्ध पोषक तत्वों का स्तर जानने के लिए उसकी जांच करायी जाए। पी.एच. मान जानना इसलिए और भी जरूरी है क्योंकि पोषक तत्वों की घुलनशीलता एवं उपलब्धता इससे बहुत अधिक प्रभावित होती है। अधिकांश फलदार वृक्षों के लिए 6.5–7.5 पी–एच– मान अच्छा पाया गया है।

खाद एवं उर्वरकों के डालने का समय इस बात पर निर्भर करता है कि फलवक्षों को किस पोषक तत्व की आवश्यकता किस समय होती है। अधिकांश फलवृक्षों की खुराक खीचने वाली जड़े तल के पास (15 सेमी. से 60 सेमी. गहराई) तथा पेड़ों के फैलाव की परिधि के अन्दर होती है। अतः खाद एवं उर्वरक वृक्षों के इसी घेरे एवं गहराई में उपलब्ध होना चाहिए।

पेड़ों की सधाई एवं कांट छांट फलवृक्षों को साधने का मुख्य उद्देश्य यह है कि एक मजबूत ढ़ांचा तैयार हो जाए और शाखाएं तरीके से सही स्थान से निकलें। ऐसा होने पर भविष्य में कृषि क्रियाएं ढ़ंग से की जा सकती है और बागों का प्रबंधन सुलभ हो जाता है। फलदार वृक्षों में काट–छांट पौधों की वृद्धि एवं फलत मे एक सामंजस्य लाने के लिए की जाती है। साथ ही साथ उचित सधाई एवं काट–छांट करने से पौधों को सूर्य का प्रकाश समुचित रूप से मिलता और पौधों की बढ़वार एवं उत्पादकता में बढ़ोत्तरी होती है।

फलों की सफल बागवानी में सही प्रजातियों के चुनाव की महत्तवपूर्ण भूमिका रहती है। एक विशेष जलवायु के लिए उसी के अनुरूप प्रजातियों की आवश्यकता होती है। अतः बागवानों को अपना बाग लगाने से पहले अपनी जलवायु की जानकारी होना परम आवश्यक है। यदि इस की पूर्णतया जानकारी नहीं है तो इस सम्बन्ध में फल सम्बंधित विषय विशेषज्ञ से जानकारी लेने के पश्चात् ही फल तथा उससे सम्बंधित प्रजातियों के पोधों को ही बाग लगाने के लिए खरीदे। किसानो की जानकारी के लिए इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण प्रजातियों के बारे में निचे दिया गया है जो निम्नलिखित है।

आम की किस्में

हमारे देश में आम की किस्मों की भरमार है परन्तु व्यवसायिक स्तर पर उगाई जाने वाली किस्मों की संख्या बहुत कम है। ऐसा देखा गया है कि विशेष किस्मों की कृषि पारिस्थितिकी में आवश्यकताएं भी अलग–अलग होती हैं। उत्तर भारत की व्यवसायिक किस्मों को दक्षिण भारत में लगाने पर फूल व फल कम आते हैं तथा पौधों की वृद्धि अधिक होती है। इसी प्रकार दक्षिण भारतीय किस्मों को उत्तर भारत में लगाने पर पौधों की वृद्धि कम होती है। अतः क्षेत्र विशेष के लिए ऐसी किस्मों का ही चयन करना चाहिए जो उस वातावरण में संतोषजनक फलत दे सके। देश के विभिन्न राज्यों की व्यवसायिक किस्मों का विवरण सारणी–1 में दिया गया है।

सारणी–1 प्रमुख राज्यों के लिए आम की व्यवसायिक किस्में

राज्य	आम की किस्में
आन्ध्र प्रदेश	बंगलौरा, बंगनपल्ली, स्वर्णरेखा, मलगोवा, बनेशान, हिमायुद्दीन
उत्तर प्रदेश	दशहरी, लंगड़ा, चौसा, बाम्बे ग्रीन, गौरजीत, रतौल, जाफरानी, लखनऊ सफेदा, आम्रपाली
उत्तखराण्ड	दशहरी, लंगड़ा, चौसा, आम्रपाली, फ़जली
बिहार	बम्बईया, गुलाब खास, मिठुआ, मालदा, किशन भोग, दशहरी, फ़जली, हिमसागर, चौसा, आम्रपाली
गुजरात	अलफान्सो, केसर, राजापुरी, जमांदार
महाराष्ट्र	अलफान्सो, केसर, पियरी, मनकुर्द, मलगोवा
पश्चिम बंगाल	हिमसागर, मालदा, फजली, किशनभोग, लखनभोग, रानी पसंद, बम्बई

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा आम की कई किस्मों का विकास किया गया है। सन् 1971 में विकसित 'मल्लिका' दक्षिण भारत में व्यावसायिक स्तर पर उगाई जा रही है साथ ही साथ सन् 1979 में विकसित बौनी किस्म 'आम्रपाली' पूरे देश में काफी प्रचलित है। सन् 2002 में संस्थान द्वारा विमोचित आम की किस्मों (पूसा सूर्या तथा पूसा अरूणिमा) की मांग भी निरंतर बढ़ती जा रही है। संस्थान द्वारा विकसित किस्मों का विवरण निम्न हैं।

मल्लिकाः आम की यह किस्म नीलम तथा दशहरी के संकरण से विकसित की गई है। इसके पौधे ओजस्वी तथा नियमित फलन देने वाले होते हैं। यह किस्म उत्तर भारत में उतनी प्रचलित नहीं है जितनी दक्षिण भारत में है। आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक में इसकी व्यवसायिक खेती बढ़ रही है। फल मध्यम आकार (300–350 ग्राम) के तथा गूदा अधिक (74.8 प्रतिशत) होता है। यह किस्म प्रसंस्करण हेतु उपयुक्त पाई गई हैं। हमारे देश से इस किस्म के फलों का निर्यात अमेरिका तथा खाड़ी देशों में किया गया है।

आम्रपालीः यह किस्म, दशहरी एवं नीलम के संकरण से

सन् 1979 में विकसित की गई है। पौधे बौने तथा नियमित फलत देते हैं। यह संकर किस्म अधिक बौनी होने के कारण सघन बागवानी हेतु अत्यन्त उपयुक्त है। यह किस्म देर से पकती है। फल मध्यम आकार के, अधिक गूदेदार तथा मिठास से भरपूर होते हैं। इस किस्म में कैरोटीन की काफी अधिक मात्रा पाई जाती है। इस किस्म को प्रसंस्करण हेतु काफी उपयोगी पाया गया है।

पूसा सूर्या: इस किस्म का विकास आयातित किस्म 'एल्डन' में चयन द्वारा किया गया है। पूसा सूर्या घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार हेतु बहुत उपयुक्त है। यह प्रतिवर्ष फल देने वाली किस्म है जिसके पौधे मध्यम आकार के होते हैं। इसके फल देरी से पकते हैं तथा आकर्षक पीले रंग पर गुलाबी आभा लिए होते हैं। फल का आकार मध्यम (270 ग्राम), मिठासयुक्त (18.5 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस प्रदार्थ) तथा भण्डारण क्षमता 8–10 दिनों तक होती है।

पूसा अरूणिमा: यह किस्म आम्रपाली एवं सेन्सेशन किस्मों के संकरण से विकसित की गई है। इसके पौधे मध्यम आकार के तथा नियमित फलन देने वाले होते हैं। यह किस्म देर से पकती है तथा तुड़ाई अगस्त के प्रथम सप्ताह में की जाती है। फल मध्यम आकार (250 ग्राम) तथा आकर्षक लाल रंग के होते हैं जिनमें मध्यम मिठास (19.5 प्रतिशत कुल घुलनशील पदार्थ) होता है। सामान्य दशा में लगभग 10–12 दिनों तक फल खराब नहीं होते एवं उनकी गुणवत्ता बनी रहती है। यह किस्म घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार हेतु उपयुक्त पाई गई है।

पूसा प्रतिभा: यह नियमित फलत देने वाली किस्म हैं। फलों के पीले सतह पर लाल रंग की आभा होने के कारण इसके फल बहुत आकर्षक दिखते हैं। फल मध्यम आकार के (181 ग्राम) एवं आकर्षक लाल रंग के होते हैं, जिनमें अधिक गूदा (71.1 प्रतिशत), मध्यम मिठास (19.6 प्रतिशत), के साथ–साथ अच्छी सुगंध भी होती है। यह किस्म घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों हेतु उपयुक्त है।

पूसा श्रेष्ट : यह नियमित फलत देने वाली किस्म है। इसके पौधे मध्यम आकार के होते है। फल आकर्षक लाल रंग के तथा आकार में लम्बोतर होते हैं। फल मध्यम आकार के (228 ग्राम) एवं आकर्षक लाल रंग के अधिक गूदायुक्त (71.9 प्रतिशत), मध्यम मिठास (20.3 प्रतिशत) के साथ–साथ अच्छी सुगंध वाले होते है।यह किस्म घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों हेतु उपयुक्त है।

पूसा पीताम्बर: इसके पौधे मध्यम आकार के तथा नियमित फलत देते हैं। इस किस्म के पौधों पर गुच्छा रोग कम आता है। फल मध्यम आकार (213 ग्राम) के आकर्षक पीले रंग के, रसयुक्त गूदा (73.6 प्रतिशत), मध्यम मिठास (18.8 प्रतिशत), के साथ–साथ अच्छी खुसबू वाले भी होते हैं। यह किस्म घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों हेतु उपयुक्त है।

पूसा लालिमा: यह नियमित फलत देने वाली किस्म हैं। इसके पौधे मध्यम ओजस्वी होते। फल मध्यम आकार के (209 ग्राम) के आकर्षक लाल रंग के होते हैं, जिनमें अधिक गूदा (70.1 प्रतिशत), मध्यम मिठास (19.7 प्रतिशत), के साथ–साथ अच्छी सुगंध भी होती है। यह किस्म घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों हेतु उपयुक्त है।

अंगूर की किस्मे

उपोष्ण जलवायु में उगाए जाने वाले किस्मों के मुख्य गुण नीचे दिए गए हैं।

ब्यूटी सीडलेस: मूलतः कैलिफोर्निया (यू.एस.ए.) से आयातित किस्म जिसे आंकलन के बाद व्यावसायिक स्तर पर लगाने के लिए सिफारिस कि गई है। यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है। इसके गुच्छे मध्यम आकार, दाने सरस, छोटे या मध्यम आकार के होते हैं। गूदा मुलायम एवं हल्का अम्लीय होता है। इस किस्म में कुल घुलनशील शर्करा (टी.एस.एस.) 18–19 प्रतिशत है। यह किस्म मध्य जून तक पकती है। तत्काल खाने या पेय बनाने के लिए उपयुक्त किस्म है।

पर्लेट: यह भी कैलिफोर्निया से आयातित किस्म है। वर्तमान समय में उत्तर भारत में करीब 80 प्रतिशत क्षैत्रफल अकेले इस किस्म के अधीन है। यह एक बीज रहित, शीघ्र पकने वाली किस्म है। इसके गुच्छे मध्यम से लम्बे, दाने सरस, हरा, मुलायम गूदा व पतले छिलका वाला होता है। इस किस्म की कुल घुलनशील शर्करा 20–22 प्रतिशत तक पाई जाती है। यह किस्म जून के दूसरे सप्ताह में पकना शुरू होती है।

पूसा सीडलेस: यह एक थॉमसन सीडलेस किस्म से चयनित किस्म (क्लोन) हैं। यह जून के मध्य से तीसरे

सप्ताह तक पकता है। गुच्छे मध्यम, लम्बे, बेलनाकार, सुगंधयुक्त एवं गठे हुए होते हैं। फल छोटे व अण्डाकार होते है तथा पकने पर पीले सुनहरे रंग के हो जाते हैं। फल खाने तथा किशमिश बनाने के योग्य होते हैं।

पूसा उर्वशीः यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है। जिसके गुच्छे कम गठीले एवं मध्यम आकार के होते हैं। दाने बीज रहित एवं हरापन लिए पीले रंग के होते हैं। यह ताजा खाने एवं किशमिश बनाने के लिए उत्तम किस्म है। फलों में घुलनशील ठोस तत्व करीब 20–22 प्रतिशत तक पाई जाती है। यह किसम बीमारियों का प्रतिरोधी है तथा उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में जहां मानसून की पहले छिंट–पुट वर्षा की समस्या है, उगाए जाने के लिए उपयुक्त है।

पूसा नवरंगः यह एक टेनटुरियर संकर किस्म है जिसमें गूदा, छिलका व रस गाढ़े लाल रंग के होते हैं। यह शीघ्र पकने वाली एवं काफी उपज देने वाली किस्म है। इसके गुच्छे मध्यम आकार, फल बीज रहित, गोलाकर एवं काले लाल रंग के होते हैं। यह किस्म रंगीन पेय व मदिरा बनाने के लिए उपयुक्त है। यह ऐन्थ्रक्नोज रोग के प्रतिरोधी तथा पूर्व मानसून के आगमन पर दाने नहीं के बराबर फटते हैं।

फ्लेम सीडलेसः यह एक कैलीफोर्निया से आयतित किस्म है। यह उत्तर भारत में लगाने के लिए उपयुक्त किस्म है। यह एक ओजस्वी, अधिक उपज वाली, गुलाबी रंग के दानो की किस्म है। दाने स्वादयुक्त (22–23 प्रतिशत मिठास) एवं आकर्षक होते हैं।

पूसा अदितिः यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है। जिसके गुच्छे गठीले एवं मध्यम आकार के होते हैं। दाने ठोस तथा बीज रहित एवं हरापन लिए पीले रंग के होते हैं। यह ताजा खाने लि, उत्तम किस्म है। फलों में घुलनशील ठोस तत्व करीब 20–21 प्रतिशत तक पाई जाती है। यह किस्म बीमारियों का प्रतिरोधी है तथा उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में जहां मानसून की पहले छिंट–पुट वर्षा की समस्या है, उगाए जाने के लिए उपयुक्त है।

पूसा त्रिशरः यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है। जिसके गुच्छे मध्यम आकार तथा विरल होते हैं। दाने मध्यम ठोस तथा बिना बीज एवं हरापन लिए पीले रंग के होते हैं। यह ताजा खाने लिए उत्तम किस्म है। फलों में घुलनशील ठोस तत्व करीब 18–19 प्रतिशत तक पाई जाती है। यह किस्म उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में उगाए जाने के लिए उपयुक्त है।

नींबू वर्गीय फलों की किस्में

नींबू वर्गीय फलों में आने वाले विभिन्न समूहों की किस्में अलग–अलग होती है। इसलिए किस्मों का चुनाव बहुत सावधानीपूर्वक करना चाहिए। इनकी विभिन्न प्रजातियों की प्रमुख किसमें निम्नवत है।

मौसमीः इस समूह की किस्मों को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया गया है।

(1) गोलाकार किस्मः वैलेनिया, हैमलिन, पाइन एपिल, पेरा, (2) पिगमेन्टेड किस्मेंः मोरो, टैरेक्को, (3) नावेल ऑरेन्ज : वागिटन नावेल, (4) अम्ल रहित किस्में : मौसम्बी, सुकारी। इसके अलावा इनको परिपक्वता के अनुसार तीन समहों में बांटा गया है।

(1) जल्दी पकने वाली किस्में (6–9 महीने): हैमलिन, (2) मध्य में पकने वाली किस्में (9–12 महीने): पेरा माल्टा, (3) देर से पकने वाली किस्में (12 महीने से अधिक): वैलेनिया।

उपरोक्त किस्मों में माल्टा, ब्लड रेड, जाफा, मौसम्बी, पाइन एपल तथा वेलेंसिया लेट उत्तरी भारत के लिए अच्छी पाई गई।

पूसा शरदः इस प्रजाति के फलों की पैदावार जाफा तथा वेलेंसिया से ज्यादा, फलों का औसत वजन 225 ग्राम, गोलाकार, 50 % रस की मात्रा, मध्यम मोटाई का छिलका, 9.20% कुल घुलनषील पदार्थ, तथा खटास 0.77% इस प्रजाति को उत्तर भारत के मैदानी उपोषण कटिबंधीय क्षेत्रो में आसानी से लगाया जा सकता है

पूसा राउंडः इस प्रजाति के फलों की पैदावार जाफा तथा वेलेंषिया से ज्यादा, फलों का आकार सामान रूप से बड़ा तथा गोलाकार, 48% रस की मात्रा, मध्यम मोटाई का छिलका, 10% कुल घुलनशील पदार्थ, तथा खटास 0.92% इस प्रजाति को उत्तर भारत के मैदानी उपोषण कटिबंधीय क्षेत्रो में आसानी से लगाया जा सकता है

संतराः हमारे देश में संतरा की कई किस्में उपलब्ध है जिनकी न केवल पैदावार अच्छी है बल्कि फलों की गुणवत्ता भी अच्छी होती है।

नागपुर संतराः यह किस्म महाराष्ट्र की प्रमुख किस्म है लेकिन उत्तरी भारत में यह व्यवसायिक खेती के लिए उपयुक्त नहीं है।

खासी संतराः पूर्वोत्तर भारत की यह एक बहुत अच्छी किस्म हैं। इसको आसाम, मणिपुर, नागालैण्ड, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा तथा अरूणाचल प्रदेश में सफलतापूर्वक उगाया जाता है।

दार्जिलिंग संतराः यह खासी संतरे जैसी किस्म है तथा सिक्कम तथा पश्चिमी बंगाल में इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

लड्डू संतराः इस किस्म की उत्पादक क्षमता कम होती है। लेकिन फल स्वादिष्ट होते हैं। इसको उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में उगाया जा सकता है।

किन्नौः यह एक संकर किस्म है। उत्तरी भारत के कुछ इलाके जैसे पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लिए यह बहुत अच्छी किस्म है।

नींबू (लेमन)

लाइम की तुलना में इसके फलों में खटास कम होती है तथा छिलका काफी मोटा होता है। इस प्रजाति के पौधे फैलने वाले होते है तथा कांटें भी कम होते हैं। यूरेका, लिजबन, कागजी कलां तथा पन्त लेमन आदि इसकी प्रमुख किस्में है।

कागजी कला नींबूः यह एक चयनित किस्म है जिसमें गर्मी में भी फल मिलता है। विभिन्न जलवायु में इसकी अनुकूलता अच्छी होती है। रस की मात्रा अधिकतर (51 प्रतिशत)। वर्ष में 2–बार फलत। अधिक पैदावार तथा प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त।

नींबू (लाइम)

इसको आम बोलचाल की भाषा में कागजी नींबू के नाम से जाना है। इनके फलों का छिलका काफी पतला होता है तथा फल अधिक खट्टे होते हैं। इसके पौधे फैलने वाले तथा कांटेयुक्त होते हैं। कागजी नींबू, विक्रम, प्रेमालिनी, जैदेवी, ए.आर.एल. 1, ए.एल.एच. 77, साई सरबती इत्यादी प्रमुख किस्में हैं।

पूसा अभिनवः यह प्रजाति अधिक पैदावार देती है। फल चिकने, थोड़े लम्बे, मध्यम वजन (35 ग्राम), पतला छिलका, जूस की मात्रा अधिक (65%), तथा 7.7% अम्लता। इसके पोधों पर वर्षभर फल लगे रहते है परन्तु फलों की अधिक संख्या अगस्त–सितम्बर तथा मार्च–अप्रैल माह में ज्यादा निकलती है।

पूसा उदितः यह प्रजाति अधिक पैदावार देती है। फल गोल, मध्यम आकार के (38 ग्राम), जूस की मात्रा मध्यम (44%), तथा 6.9% अम्लता होती है। इसके पोधों पर वर्षभर फल लगे रहते हैं परन्तु फलों की अधिक संख्या अगस्त–सितम्बर तथा फरवरी–मार्च माह में ज्यादा निकलती है।

अमरुद की उन्नत किस्मे

अमरूद की किस्मों को मुख्यतः बीजदार तथा बेदाना दो भागों में बांटा जा सकता है। बीजदार किस्मों को फलों के आकार, रंग, स्थान तथा पृष्ठ तल के आधार पर पुनः विभाजित किया गया है कुछ मुख्य किस्में निम्न प्रकार है।

इलाहाबाद सफेदाः यह उत्तर प्रदेश की देश भर में धाक जमाने वाली किस्म है तथा सर्वाधिक क्षेत्रफल इसी किस्म के अंर्तगत आता है। इसके पेड़ लम्बे और फल चिकने व चमकदार तथा छिलका पीला होता है। गूदा सफेद एवं मुलायम और मीठा होता है। इसके फलों में विटामिन सी की मात्रा 205.2 प्रति 100 ग्राम होती है। इसके फलों की भण्डारण क्षमता अच्छी है।

सरदार (लखनऊ 49): यह एक संस्थापित किस्म है इसके पेड़ चितनार होते हैं। इसकी फलत बहुत अच्छी तथा फल बहुत उच्चकोटि के होते हैं। फलों में विटामिन सी की मात्रा 315.2 मिग्रा प्रति 100 ग्राम होती है। यह उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश की लोकप्रिय किस्म है।

चित्तीदारः यह किस्म इलाहाबाद सफेदा के समान होती है। किन्तु फलों की सतह पर लाल चकत्ते पा, जाते हैं। इसका विकास इलाहाबाद क्षेत्र में किया गया है। पेड फेलने वाला, मध्यम शाखाएं और पैदावार मध्यम होती है।

सफेद जामः यह किस्म फल अनुसंधान केन्द्र, संगारेड्डी, आन्ध्र प्रदेश द्वारा इलाहाबाद सफेदा तथा कोहीर के संस्करण से विकसित की गई है। इसकी फलत बहुत

अधिक है। फल आकार में बड़े, गूदा मुलायम तथा उच्चकोटि के होते हैं। फलों में बीज की मात्रा कम होती है तथा विटामिन सी की मात्रा 216.7 मिग्रा प्रति 100 ग्राम होती है।

कोहीर सफेदः यह किस्म भी फल अनुसंधान केन्द्र, संगारेड्डी, आन्ध्र प्रदेश द्वारा कोहीर तथा इलाहाबाद सफेदा के संस्करण से विकसित की गई है। फल बड़े आकार के तथा जल्दी पकते हैं। इनका गूदा मुलायम व बीजों की संख्या कम होती है। इसमे विटामिन सी की मात्रा 519.2 मिग्रा प्रति 100 ग्राम होती है।

इसके अलावा अमरूद की अन्य प्रमुख किस्में बनारसी सुर्खा, एपल कलर, बेहट, कोकोनट, नासिक, धारवाड, धारीदार, हब्शी थाई ग्वावा, बीही तथा ललित भी काफी लोकप्रिय है।

पपीते की किस्में

पपीता में खुले परागण के चलते और बीज प्रवर्धन के कारण किस्में अस्थाई हैं और एक ही किस्म में विभिन्नता पाई जाती है। अतः फूल आने से पहले नर और मादा पौधों का अनुमान लगाना कठिन है। इनमें कुछ प्रचलित किस्में जो देश के विभिन्न भागों में उगाई जाती हैं और अधिक संख्या में मादा फूलों के पौधे मिलते हैं इनमें से मुख्य प्रजातियां का विवरण इस प्रकार है।

पूसा ड्वार्फः यह छोटी बढ़वार वाली डाइसियश किस्म कहीं जाती है। जिसमें नर तथा मादा फूल अलग अलग पौधे पर आते हैं। फल मध्यम तथा ओवल आकार के होते हैं। इसका बीज सामान्य मूल्य में आसानी से पूसा संस्थान व इसके क्षैत्रिये केन्द्रों (पूसा, बिहार) पर मिल जाता है।

पूसा नन्हाः इस प्रजाति का पौधा बहुत छोटे होते हैं तथा गृहवाटिका के लिए अधिक उपयोगी होती है। साथ ही साथ बागवानी के लिए भी उपयुक्त है। इसका भी बीज सामान्य मूल्य में आसानी से पूसा संस्थान व इसके केन्द्रों पर मिल जाता है।

कोयम्बटूर–1: पौधा छोटा डाइसियश होता है। फल मध्यम आकार के तथा गोलाकार होते हैं।

कोयम्बटूर–3: यह एक गाइनोडाइसियश प्रजाति है। पौधा लम्बा, मजबूत तथा मध्यम आकार का फल देने वाला होता है। पके फल में शर्करा की मात्रा अधिक होती है तथा गूदा लाल रंग का होता है।

कोयम्बटूर–6: यह पौधा छोटा डाइसियश होता है। फल 1.5 किलो के आसपास के होते हैं। पौधा मध्यम लम्बा, मजबूत तथा मध्यम आकार का फल देने वाला होता है। यह पपेन के लिए उपयुक्त होता है।

कूर्ग हनिड्यूः यह गाइनोडाइसियश जाति है। इसमें नर पौधे नहीं होते हैं। फल का आकार मध्यम तथा लम्बवत गोलाकार लिए होता है। गूदे का रंग नारंगी पीला लिए होता है।

वाशिगटनः यह अधिक उपज देने वाली विभिन्न जलवायु में उगाई जाने वाली प्रजाति है। इस पौधे की पत्तियों के ड.ठल बैगनी रंग के होते है। जो इस किस्म की पहचान कराते हैं। यह डाइसियन किस्म हैं फल मीठा गूदा पीला तथा अच्छी सुगंध वाला होता है।

पन्त पपीता–1: इस किस्म का पौधा छोटा तथा डाइसियश होता है। फल मध्यम आकार के गोल होते है। फल मीठा तथा सुगंधित तथा पीला गूदा लिए होता है। यह पककर खाने वाली अच्छी किस्म है तथा तराई एवं भावर के लिए अधिक उपयोगी है।

सूर्याः इस किस्म का विकास भारतीय उद्यान अनुसंधान संस्थान, हैसरगट्टा बैंगलोर से किया गया है। यह एक संकर व गाइनोडाइसियश प्रजाति है। इसमें नर पौधे नहीं होते हैं। फल का आकार मध्यम तथा लम्बवत गोलाकार लिए होता है तथा गूदे का रंग लाल होता है।

सिन्टाः फिलीपींस से विकसित इस किस्म का पौधा छोटा तथा गाइनोडाइसियश होता है। फल का आकार मध्यम तथा गोलाकार लिए होता है। गूदे का रंग लाल होता है। इसका बीज बहुत महंगा है। लेकिन आसानी से निजी दुकानों पर मिल जाता है ।

रेड लेडीः यह ताइवान से विकसित गाइनोडाइसियश किस्म है। इसमें नर पौधे नहीं होते हैं। फल का आकार मध्यम तथा लम्बवत गोलाकार लिए होता है। गूदे का रंग लाल होता है। इसका भी बीज आसानी से निजी दुकानों पर मिल जाता है।

आंवले की किस्में

कंचन (एन.ए. 4): यह चकईया किस्म से चयनित प्रजाति है। इस किस्म में मादा फूलों की संख्या अधिक (4–7 मादा फूल प्रति शाखा) होने के कारण यह अधिक फलन नियमित रूप से देती है। फल मध्यम आकार के गोल एवं हल्के पीले रंग के व अधिक गूदायुक्त होते हैं। अधिक गूदा युक्त होने के कारण यह किस्म गूदा निकालने हेतु एवं अन्य परिरक्षित पदार्थ बनाने हेतु औद्योगिक इकाइयों द्वारा पसन्द की जाती है। यह मध्यम समय में परिपक्व होने वाली किस्म है (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर)। वर्तमान समय में यह प्रजाति महाराष्ट्र एवं गुजरात के शुष्क एवं अर्धशष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा रही है।

कृष्णा (एन.ए. 5): यह बनारसी किस्म से चयनित एक अगेती प्रजाति है जो मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर में पककर तैयार हो जाती है। इस किस्म के फल बड़े और ऊपर से तिकोने होते हैं। फलों की सतह चिकनी सफेद हरी से हल्की पीली तथा लाल धब्बेदार होती है। फल का गूदा गुलाबी हरे रंग का, कम रंगायुक्त तथा अत्यधिक कसैला होता है। फल मध्यम भण्डारण क्षमता वाले होते हैं। अपेक्षाकृत अधिक मादा फूल आने के कारण इस किस्म की उत्पादन क्षमता बनारसी किस्म की अपेक्षा अधिक होती है। यह किस्म मुरब्बा, कैण्डी एवं जूस बनाने हेतु अत्यन्त उपयुक्त पाई गई है।

नरेन्द्र आंवला–7: यह फ्रान्सिस (हाथी झूल) किस्म के बीजू पौधों से चयनित प्रजाति है। यह शीघ्र फलने वाली नियमित एवं अत्यधिक फलन देने वाली किस्म है। यह मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर तक पककर तैयार हो जाती है। यह किस्म ऊतक क्षय रोग से मुक्त है। फल मध्यम से बड़े आकार के, ऊपर तिकोने, चिकनी सतह तथा हल्के पीले रंग वाले होते हैं। इस किस्म की प्रमुख समस्या अधिक फलन हैं जिसके कारण इसकी शाखाओं में टूटने की समस्या देखी गई है। अतः फल वृद्धि के समय शाखाओं में सहारा देना उचित होता है। यह किस्म च्यवनप्राश, चटनी, अचार, जैम एवं इस्क्वेश बनाने हेतु अच्छी पाई गई है। इस किस्म को राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश तथा तमिलनाडु के शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में व्यावसायिक खेती के लिए पसंद किया जाता है।

नरेन्द्र आंवला–10: यह बनारसी के बीजू पौधे से चयनित अधिक फलन देने वाली प्रजाति है। फल देखने में आकर्षक, मध्यम से बड़े आकार वाले, चपटे गोल, सतह कम चिकनी हल्के पीले रंग वाली, गुलाबी रंग लिए होते हैं। फलों का गूदा सफेद हरा, रेशे की मात्रा अधिक एवं फिनाल की मात्रा कम होती है। अधिक उत्पादन क्षमता, शीघ्र पकने के कारण एवं सुखाने एवं अचार बनाने हेतु उपयुक्तता के कारण यह व्यावसायिक खेती हेतु उपयुक्त किस्म है।

बेर की किस्में

वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर विभिन्न विकसित उत्तम प्रजातियों को भिन्न–भिन्न प्रदेशों के लिए उपयुक्त पाया गया है जो तालिका में निम्नानुसार है।

तालिका–2 बेर की किस्में

प्रदेश	अगेती पकने वाली	मध्य पकने वाली	देर में पकने वाली
पंजाब	गोला, सेब	बनारसी कड़ाका, कैथली, नाजुक, संधूरा नारनोल	उमरान, दनदन, सनौर–2
हरियाणा	गोला, सेब	कैथली	उमरान
राजस्थान	गोला, जोगिया, सेब, थार सेविका, थार भुवराज	मुड़िया, बनारसी कड़ाका	उमरान
उत्तर प्रदेश	छुआरा, जोगिया	मुड़िया, बनारसी कड़ाका, नरमा, बनारसी	उमरान
बिहार	–	बनारसी कड़ाका, नागपुरी	थार्नलेस, छुआरा
महाराष्ट्र	शांमवेर	बनारसी, डराखी खरकी	उमरान
गुजरात	गोला	महरन्न रंदेड़ी	उमरान
आन्ध्र प्रदेष	दूधिया	बनारसी कड़ाका	–
पश्चिमबंगाल	जोगिया	कैथली, सेब	दनदन, इलाइची

थार सेविका: बेर की यह किस्म सेब एवं काढ़ा के संकरण से विकसित की गई है। इसके पौधे ओजस्वी तथा अधिक सूखा सहन करने वाले होते हैं। फल जल्दी पकते हैं। अतः तुड़ाई दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह शुरू की जा सकती है। फलों की औसत पैदावार 65–70 क्वि./है. मिल जाती है। फल का आकार मध्यम, मिठासयुक्त (24 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) तथा भण्डारण की क्षमता अधिक होती है।

थार भुवराज: इस किस्म का विकास चयन विधि से किया गया है। इसके पौधे भी ओजस्वी एवं अधिक सूखा सहन करने वाले होते हैं। फल दिसम्बर के आखिरी सप्ताह में पककर तैयार हो जाते हैं। फलों की औसत पैदावार 70–75 क्वि./है. मिल जाती है। फलों का आकार मध्यम, मिठासयुक्त (24 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) तथा भण्डारण क्षमता भी अच्छी रहती है।

शीतोष्ण फलों की गर्म क्षेत्रों के लिए किस्में

विश्व के विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों पर लम्बे शोध के फलस्वरूप बहुत सारी संभावी प्रजातियों का विकास किया गया है। इनमें से कुछ किस्मों को ताईवान, वियतनाम, फ्लोरिड़ा तथा आस्ट्रेलिया के उपोष्ण हिस्सों में व्यवसायिक रूप से पैदा किया जा रहा है। इनकी जानकारी नीचे सारणी–3 में दी गई है।

तालिका 3. शीतोष्ण फलों की प्रजातियां जिनको कम शीतलन की आवश्यकता होती है

फल	किस्म (कोष्ठक में दी गई संख्या चिलिंग आवश्यकता को दर्शाती है)
आड़ू	फ्लोरडा ग्राण्डे (100), फ्लोरिड़ा रेड (110), फ्लोरिड़ा प्रीन्स (150), ट्रोपिक ब्यूटी (150), प्रभात, प्रताप, सहारनपुर प्रभात, शान–ए–पंजाब, सहारनपुर नं–6, रंजीत बाग अगेती, सफेदा, सहारनपुर हाईब्रिड–3, बबकॉक
नेक्टरीन (आड़ू)	सनबेस्ट (225), सनरायसर (250), यू.एफ. रोयल (250), यू.फ. क्वीन (250), सनमिस्ट (275),
सेब	डोरसेट गोल्डन (250), अन्ना (300), ट्रोपीकमैक (300), ट्रोपिक स्वीट (300), ट्रोपिक ब्यूटी, विन्टर बनाना
नाशपाती	पथरनख, गोला, लिकोन्टी, कीफर, बग्गूगोसा, चाईना पीयर, बाल्डविन, फ्लोरिडा होम, सूली, याली
स्ट्राबेरी	चांडलर, तिओगा, टोरे, सेल्वा, बेलरूबी, फर्न, पजारो
आलू बुखारा	सतलुज परपल, काला अमृतसरी, जामुनी मोती, टाईट्रोन, आलू बुखारा, अलूचा ब्लैक, गल्फ ब्यूटी, गल्फ ब्लेज, गल्फ रोज
खुमानी	न्यू केसल, अर्ली शिपले, सेंट एम्बोइज
बादाम	कैलीफोर्निया पेपर सेल, हाईब्रिड–15, पेथिक्स वन्डर, आजक (266), देसमाये, लारग्यूवेटा (309), मारकोना (435), मारता (478), फेरागनस (558)
परसीमोन	हचीया, फूजू, जीरो, हयाकूमा
जैतून	आरबेक्यूना, बरनीया, फ्रन्तोयो, कोरोनेकी, लेक्सीनो, पीकूअल, कोरातीना, पीकोलाईन

फलों की सघन बागवानी

उच्च घनत्व रोपण में फल वृक्षों को उनकी सामान्य रोपण दूरी की अपेक्षा अधिक सघनता से लगाया जाता है इसके साथ–साथ फल वृक्षों की सघनता के हिसाब से उसमे सिंचाई, पोषण प्रबंधन, कटाई–छटाई तथा कीट–व्याधि इत्यादि का प्रबंधन किया जाता है। उच्च घनत्व रोपण में पौधे के छत्रक का आकार कम होने की वजह से प्रति वृक्ष उपज कम होती है किन्तु प्रति हेक्टेयर में पौधों की संख्या अधिक होने से कुल उपज ज्यादा उपज प्राप्त होती है। उच्च घनत्व रोपण के बहुत सारे फायदे हैं जैसे भूमि तथा अन्य स्त्रोतों का उपयुक्त उपयोग, प्रति हेक्टेयर अधिक उपज, गुणवत्तायुक्त फलोत्पादन तथा बाग के विभिन्न क्रिया–कलापों जैसे कीट–व्याधि प्रबंधन, फल–तुड़ाई में सुविधा इत्यादि है। प्रत्येक फल वृक्ष के लिए उच्च घनत्व रोपण की प्रक्रिया तथा प्रबंधन भिन्न होता है। इसलिए यह आवश्यक है की उन्हें अलग–अलग समझा जाएद्य प्रत्येक फल वृक्ष में उच्च घनत्व रोपण को अपनाने से पहले, उसकी फल उत्पादन करने से सम्बंधित वानस्पतिक विशेषताओं को समझना भी आवश्यक है। जिससे की छटांई के द्वारा उच्च घनत्व रोपण का प्रबंध किया जा सके।

आम में सघन बागवानी

आम मुख्य रूप से पुरानी षाखाओं पर फल उत्पन्न करता है। फलों की तुड़ाई के बाद जो प्ररोह नए उत्पन्न होते हैं कुछ समय पश्चात पुराने हो जाते हैं वो ही अगले वर्ष की फसल के लिए फूल एवं फल उत्पन्न करते हैं। इसलिए आम में प्रतिवर्ष छंटाई के द्वारा उच्च घनत्व को प्रबंधित करने की संभावना नहीं रहती। जैसा कि नए प्ररोहों पर फूल एवं फल उत्पन्न करने वाले फल अमरुद में होती है। आम को परंपरागत तरीके से 10X10 मी. की दूरी पर लगाते हैं। जिसमें कि प्रति हेक्टेयर 100 पौधे आते हैं। कंही–कंही तो 10–15 मी. की दूरी पर भी लगाते हैं जिससे कि उनकी कतारों के बीच का स्थान व्यर्थ हो जाता है। तथा 15–20 वर्षों के पश्चात जब ये वृक्ष बड़े हो जाते हैं तो इनसे फल तोड़ने तथा अन्य कृषि क्रियाओं को करने में असुविधा होती है। आम की नयी किस्मों के विकास की वजह से इसमें उच्च घनत्व पर रोपण संभव हो पाया है। भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा आम कि आम्रपाली किस्म विकसित की गई है, जिसका वृक्ष छोटे (बौने) आकार का होता है और इसे सघन बागवानी में आसानी से लगाया जा सकते हैं। इसे 2.5 मी. x 2.5 मी. की दूरी पर त्रिकोणीय पद्धति में लगाया जा सकता है। इस प्रकार प्रति हेक्टेयर 1600 पौधे समायोजित किये जा सकते हैं। यदि संभव हो तो आम्रपाली के उच्च घनत्व के बाग की स्थापना करने के लिए मूलवृन्त पहले बाग में लगा देना चाहिए। फिर उस पर आम्रपाली की ग्राफ्टिंग करना चाहिए। इसे बाग स्थापना की 'इन सीटू' प्रणाली कहा जाता है। पौधों को झाड़ीनुमा रखने के लिए प्रारम्भ के दो वर्षो तक शीर्ष कलिका की तुड़ाई आवश्यक है। बाग स्थापना के तीन वर्ष बाद पौधों में फलन शुरू हो जाता है। पौधे लगाने के प्रथम वर्ष में 100 ग्राम नाइट्रोजन, 80 ग्राम फॉस्फोरस और 100 ग्राम पोटाश तथा 10 किलोग्राम गोबर की खाद प्रति पेड़ के हिसाब से डालना चाहिए। प्रत्येक वर्ष इस मात्रा को बढ़ाना चाहिए। इस तरह दस वर्ष के वृक्ष में 1000 ग्राम नाइट्रोजन, 500 ग्राम फॉस्फोरस तथा 1000 ग्राम पोटाश देना पड़ेगा। गोबर की खाद तथा फोस्फेटयुक्त उर्वरकों को अक्टूबर तथा नाइट्रोजन एवं पोटाशधारी उर्वरकों की आधी मात्रा अक्टूबर माह में तथा शेष आधी मात्रा फल तुड़ाई के पश्चात जून–जुलाई में देना चाहिए। बाग स्थापना के 12 वर्ष पश्चात अत्यधिक पादप वृद्धि के कारण फल उपज घटने लगती है इसलिए शाखाओं की छटाई आवश्यक होती है (तालिका 4)।

तालिका 4: आम की परंपरागत और सघन बागवानी पद्धतियों में अनुमानित लागत, शुद्ध लाभ और अन्य विवरण

विवरण	परंपरागत पद्धति	सघन बागवानी पद्धति
पौध अंतरण	10 मी. x 10 मी.	2.5 मी. x 2.5 मी.
प्रति हेक्टेयर पौध संख्या	100	1600
बाग स्थापना की लागत	रु. 30,000	रु. 75,000
वार्षिक लागत	रु. 20,000	रु. 35,000
स्थाई उपज	8 से 10 वर्ष पश्चात	7 से 8 वर्ष पश्चात
उत्पादन (किग्रा/हेक्टेयर)	6000 से 8000	16,000 से 19, 000
उपज की थोक बिक्री (रु. ७० प्रति किग्रा की दर से)	रु. 42,000 से 56,000	
	रु. 1,12,000 से 1,33,000	
शुद्ध लाभ	रु. 22,000 से 36,000	रु. 77,000 से 98,000

अमरुद में सघन बागवानी

अमरुद मुख्यतः नए उत्पन्न हुए प्ररोहों पर फूल एवं फल उत्पन्न करता है। इसका अर्थ यह हुआ की जब भी हम छटाई करेंगे, तत्पश्चात उत्पन्न नए प्ररोह फूल तथा फल उत्पन्न करने में सक्षम होंगे। भारत में अमरुद की तीन फसलें होती हैं। अप्रैल–मई में आने वाले फूल वर्षा ऋतु

की फसल उत्पन्न करते हैं, जुलाई–अगस्त में आने वाले फूल शीत ऋतु की तथा अक्टूबर–नवम्बर में आने वाले फूल बसंत ऋतु की फसल देते हैं। इस प्रकार हम छटाई के द्वारा अमरुद में आसानी से उच्च घनत्व रोपण का प्रबंधन कर सकते हैं।

अमरुद को सामान्यतः 6 मी. x 6 मी. तथा 7 मी. x 7 मी. पर लगाया जाता है। तथा उच्च घनत्व रोपण की बात करें तो 3 मी x 1.5 मी., 3 मी x 3 मी., 6 मी. x 3 मी. पर भी लगाया जाता है। तथा इससे भी अधिक सघनता पर 2 मी. x 1 मी. पर लगाया जाता है जिसे 'मीडो बागवानी' के नाम से जाना जाता है। जब अमरुद को उच्च घनत्व रोपण एवं मीडो बागवानी पर लगाया जाता है तो पौधों के बागों में स्थापित हो जाने के पश्चात उनकी संधाई की जाती है। इसके लिए उन्हें जमीन से 60–70 सेमी. एवं 30–40 सेमी. की ऊंचाई (उच्च घनत्व रोपण एवं मीडो बागवानी क्रमषः) पर काँट दिया जाता है। इसके पश्चात नीचे से निकलने वाली शाखाओं में से तीन या चार शाखाओं को जो कि उचित दूरी पर हों तथा जिनका मुख्य तने से क्रॉच एंगल (दो शाखाओं के बीच का कोण) बड़ा हो उनका चयन करके, उन्हें बढ़ने दें। बाकी अनावश्यक शाखाओ को हटा देना चाहिए। और पौधा लगाने के दो वर्षों तक नए निकले प्ररोहों को निकलने के तीन–चार माह बाद उनकी लम्बाई का आधा अर्थात 50% काँट देना चाहिए। अमरुद में नए निकले प्ररोहों को पुरानी शाखाओं से आसानी से पहचाना जा सकता है। नए प्ररोह हल्के हरे रंग के होते हैं जबकि पुराने प्ररोह भूरे रंग के होते हैं। इसके बाद तीसरे वर्ष से जनवरी–फरवरी एवं मई–जून में नयी शाखाओं को उनकी लम्बाई का 50% काँट देना चाहिए।

मीडो बागवानी में पौधों की संधाई के पश्चात नयी शाखाओं के निकलने के तीन–चार माह बाद उन्हें 50% कांट देना है। यह प्रक्रिया तब तक दोहरानी है जब तक की उसमे फूल एवं फल लगना शुरू ना हो जाए। इसके पश्चात प्रत्येक वर्ष में तीन बार छंटाई करनी होती है मई–जून, सितम्बर–अक्टूबर तथा जनवरी–फरवरी में हर छंटाई के समय प्रत्येक नयी शाखा को उसकी लम्बाई के 50% कांट देना है। यह प्रक्रिया 4–5 वर्ष तक चलती रहेगी, साथ ही साथ फलोत्पादन होता रहेगा। पांच वर्ष के पश्चात जब पौधे थोड़े घने होकर एक दूसरे से टकराने लगे तो पूरे वृक्ष को 50% कांट देना चाहिए। इसके बाद अगले साल (छठवे वर्ष) से पुनः वर्ष में तीन बार छंटाई करनी है जैसा की ऊपर वर्णित किया गया है।

इसके अलावा बगीचे के प्रबंधन के अन्य पहलुओं का भी विशेष ध्यान रखना होता है। जैसे कि खरपतवारों का नियंत्रण, सिंचाई, पोषण प्रबंधन एवं कीट–व्याधियों का नियंत्रण इत्यादि। उच्च घनत्व रोपण में खरपतवार नियंत्रण श्रमिको के द्वारा या खरपतवारनाशी का उपयोग करके किया जाता है। क्योंकि पौंधों कि कतारो के बीच कि दूरी कम होने कि वजह से ट्रैक्टर नहीं चलाया जा सकता। इसके अलावा सिंचाई के लिए ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग करना उचित होता है (तालिका 5)। उच्च घनत्व रोपण में पोषण–प्रबंधन का भी विशेष ध्यान रखना होता है। इसका वर्णन तालिका 6 में किया गया है।

तालिका 3: उच्च घनत्व रोपण (3 मी x 1.5 मी., 3 मी x 3 मी. एवं 6 मी. x 3 मी.) एवं मीडो बाग में ड्रिप सिंचाई हेतु आवश्यक पानी कि मात्रा (ली./दिन/पौधा)

वर्ष	ड्रिप सिंचाई के लिए आवश्यक मात्रा (ली./दिन/पौधा)	
	उच्च घनत्व रोपण	मीडो बाग
पहला वर्ष	4–6	2–3
दूसरा वर्ष	8–12	4–5
तीसरा वर्ष	15–20	6–8
चौथा वर्ष	25–30	10–12
पांचवा वर्ष तथा इससे अधिक	35–40	14–16

तालिका 6: उच्च घनत्व रोपण (3 मी. x 1.5 मी., 3 मी. x 3 मी. एवं 6 मी. x 3 मी.) एवं मीडो बाग में पोषण प्रबंधन

वर्ष	उच्च घनत्व रोपण				मीडो बाग			
	यूरिया (ग्रा./पौधा)		एस. एस. पी. (ग्रा./पौधा)	एम .ओ.पी. (ग्रा./पौधा)	यूरिया (ग्रा./पौधा)		एस. एस. पी. (ग्रा./पौधा)	एम. ओ.पी. (ग्रा./पौधा)
	जून	सितम्बर	सितम्बर	जून	जून	सितम्बर	सितम्बर	जून
पहला वर्ष	182	78	375	100	90	40	185	50
दूसरा वर्ष	364	156	750	200	180	110	370	100
तीसरा वर्ष	564	234	1125	300	270	115	555	150
चौथा वर्ष	728	312	1500	400	360	150	740	200
पांचवा वर्ष तथा इससे अधिक	910	390	1875	500	450	190	900	250

नींबू वर्गीय फलों में सघन बागवानी

नींबू वर्गीय फलों की बात करें तो मौसम्बी, ग्रेपफ्रूट, संतरा, नींबू (लाइम), नींबू (लेमन), चकोतरा इत्यादि में सघन बागवानी संभव है। इसके लिए हर वर्ग की अलग–अलग किस्मे हैं (तालिका 7) ।

तालिका 7: सघन बागवानी के लिए नींबू वर्गीय फलों की उपयुक्त किस्मे

स.क्र.	वर्ग	किस्में
1.	मौसम्बी	मौसंबी, माल्टा, ब्लड रेड
2.	ग्रेपफ्रूट	डंकन, फोस्टर, मार्श सीडलेस, इम्पेरियल स्टार, रूबी, रेड ब्लश
3.	संतरा	किन्नौ, नागपुर संतरा, कूर्ग संतरा
4.	नींबू (लाइम)	कागजी, विक्रम, जयदेवी, ए. आर. एल. –1
5.	नींबू (लेमन)	कागजी कलां, पन्त लेमन, यूरेका
6.	चकोतरा	सफेद, लाल एवं गुलाबी गूदे वाली

बाग की सघनता के अनुसार रोपण दूरी का निर्धारण किया जाता है। जैसे यदि मध्यम सघन बाग लगाना है तो रोपण दूरी 5 मी. x 6 मी. से 4 मी. x 3 मी. (300–400 पौधे प्रति हेक्टेयर) रख सकते हैं। इसी प्रकार अत्यधिक सघन एवं अति उच्च सघन बागवानी के लिए रोपण दूरी क्रमशः 4 मी. x 3 मी. से 3 मी. x 2 .5 मी. (700–1500 पौधे प्रति हेक्टेयर) तथा 2 .5 मी. x 2 .5 मी. रहेगी। बाग में पोषक तत्वों का प्रबंधन भी अत्यधिक आवश्यक है। जो निम्नलिखित है :

तालिका 8: नीबू वर्गीय फलों के बाग में पोषण प्रबंधन के लिए खाद एवं उर्वरक की मात्रा

वृक्ष की आयु	मात्रा किलोग्राम प्रति वृक्ष			
वर्ष	गोबर की खाद	अमोनियम सल्फेट	सुपर फॉस्फेट	पोटैशियम सल्फेट
1	20	0.250	0.250	0.250
2	25	0.500	0.250	0.250
3	30	1.000	0.500	0.500
4	40	1.500	1.000	0.750
5	50	2.000	2.000	1.000

पपीते में सघन बागवानी

पपीता एक सदाबहार तरह का पौधा है जिसमे की सख्त लकड़ी नहीं होती है। इसमें किसी तरह की कटाई –छटाई की संभावना नहीं होती। अतः इसमें सघन बागवानी केवल उपयुक्त किस्म का चयन तथा रोपण दूरी को कम करके की जाती है। पपीते में सघन बागवानी के लिए बौनी किस्मों जैसे पूसा नन्हा एवं पूसा ड्वार्फ को लगाया जाता ह। पूसा नन्हा के पौधों को 1.2 मी. x 1.2 मी. (6400 पौधे प्रति हेक्टेयर) तथा पूसा ड्वार्फ को 1.5 मी. x 1.5 मी. (4444 पौधे प्रति हेक्टेयर) लगाया जा सकता है। पौधों को लगाने से पहले गड्ढे में 20 किग्रा. गोबर की खाद डालें। तथा 20–25 दिनों के पश्चात पौधें लगाएं। पपीते के बगीचे में सिंचाई तथा जल निकास का उचित प्रबंधन होना चाहिए। पपीते के एक वर्ष के पौधे को 250 ग्रा. नाइट्रोजन, 300 ग्रा. फास्फरोस तथा 400 ग्रा. पोटाश उपयुक्त होता है। इस पूरी मात्रा को छह बराबर भागों में बांटकर प्रति 2 माह के अंतराल में देना चाहिए। यदि दूसरे वर्ष भी फल लेना चाहते हैं तो ऊपर बताई गई मात्रा को डालें। इसके साथ–साथ 20–25 किग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, एक किग्रा. बोन मील तथा एक किग्रा. नीम की खली डालें।

अंगूर में सघन बागवानी

अंगूर एक उपोषण कटिबंधीय तरह का पौधा है उत्तर भारत में सर्दियों के समय पत्तियाँ गिर जाती है। और यही समय होता है इसमें कटाई –छटाई करने का। अंगूर में बाग की सघनता इस बात पर निर्भर करती है कि उन्हें संघाई की किस प्रणाली में लगाया गया है। हर संघाई प्रणाली में रोपण दूरी निर्धारित होती है। अंगूर में मुख्यतः शीर्ष प्रणाली, निफिन प्रणाली, बॉवर प्रणाली तथा टेलीफोन प्रणाली में लगाया जाता है। हर प्रणाली की अपनी एक विधि है जिसके अनुसार पौधों की संघाई की जाती है। इन सभी प्रणालियों में बोवर प्रणाली सबसे अधिक आमदनी देती है।

शीर्ष प्रणालीः इस प्रणाली में पौधे को एक झाड़ी की तरह रखा जाता है। इसमें बेल को 1.2 मी. की ऊंचाई पर काँटा जाता है। जिससे कि बाजू की शाखाएं निकल सके। जमीन सतह से 75 सेमी. की ऊंचाई के ऊपर चार शाखाओं का चयन करके उन्हें बढ़ने दिया जाता है। बाकी की शाखाओं को काँट दिया जाता है। जब पौधे सुषुप्त होते हैं तो इन चार शाखाओं को दो कलियाँ छोड़कर काँट दिया जाता है। अगले वर्ष पुनः सुषुप्त अवस्था में 1–2 स्पर छोड़कर शेष शाखाओं को हटा दिया जाता है। इस तरह 3–4 वर्षों में वह एक छोटी झाड़ी की तरह हो जाती है।

बॉवर प्रणाली : इस प्रणाली में रोपण दूरी 3 मी. x 3 मी. होती हैं। इस प्रणाली में अंगूर की बेल को एक पंडाल के ऊपर साधा जाता है। जो जमीन से 2.4 मी. की ऊंचाई पर होता है। तथा इसमें तारों की 60 सेमी. की दूरी पर लगाया जाता है। जब बेल पंडाल तक पंहुच जाती है तब उसे ऊपर से काँट दिया जाता है। जिससे कि उससे शाखाएं निकल सके। इसमें से दो शाखाओं का चयन किया जाता है जो कि विपरीत दिशाओं में होती है। तथा इस पर द्वितीयक शाखाओं को जो एक दूसरे से लगभग 60 सेमी. की दूरी पर होती हैं, को बढ़ने दिया जाता है। इसके बाद इन द्वितीयक शाखाओं से 8–10 तृतीयक शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है, जिससे यह पंडाल की तरह दिखाई देने लगता है।

निफिन प्रणाली : इस प्रणाली को चार केन प्रणाली भी कहते हैं। इसमें दो तारों को खम्भों की सहायता से 60 सेमी. तथा 90 सेमी. पर लगे होते हैं। जब बेल 60 सेमी. लंबी हो जाती है और तार तक पहुँच जाती है तो दो शाखाओं को विपरीत दिशा में तार के सहारे बढ़ने दिया जाता है तथा एक को सीधे बढ़ने के बाद 90 सेमी. की ऊंचाई पर स्थित तार पर तक पहुँचने दिया जाता है। इसके बाद पुनः दो शाखाओं का चयन करके उन्हें विपरीत डिश में बढ़ने दिया जाता है।

टेलीफोन प्रणालीः इस प्रणाली में बेल को ट्रेलिस तक बढ़ने दिया जाता है। जो की 1.5–1.6 मी. की ऊंचाई पर होता है। इसके बाद बेल के सिरे को काँट देते हैं, जिससे की बाजू से शाखाएं निकलती है इनमे से दो शाखाओं का चयन करके उन्हें विपरीत दिशा में बढ़ने दिया जाता है। और हर प्राथमिक शाखा से चार द्वितीयक शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है। तथा इन द्वितीयक शाखाओं पर 6–8 तृतीयक शाखाओं को जिन पर फल लगते हैं, बढ़ने दिया जाता है।

उपरोक्त वर्णित सभी तथ्यों के अलावा कुछ तथ्य हैं जिनका ध्यान रखना भी आवश्यक है। जैसे कि जब भी

छंटाई करें, कांटे हुए भाग पर बोरडेक्स पेस्ट लगाएं। कीट–व्याधियों का समय पर प्रबंधन करें। उपज की सही तरीके से तुड़ाई, श्रेणीकरण, पैकेजिंग एवं पैकिंग, तथा मार्केटिंग करें। उच्च घनत्व रोपण की सफलता बाग में होने वाली सभी क्रियाओं को गहनता से प्रबंधित करने में है, इसलिए प्रत्येक चरण पर समय तथा उस समय बाग में होने वाली क्रियाओं के बीच में तालमेल होना ही उच्च घनत्व की सफलता को निर्धारित करता है।

फलों में लगने वाले प्रमुख कीट, रोग एवं उनका प्रबंधन

खर्रा (चूर्णिल आसिता) रोगः इस रोग के लक्षण मंजरियों, पत्तियों एवं नए फलों पर देखे जा सकते हैं। प्रभावित भाग पर सफेद चूर्णिल परत दिखाई पड़ती है। रोकथाम हेतु मंजरियों पर गंधक के महीन चूर्ण (200–300 मेश) का बुरकाव करना चाहिए। पहला छिडकाव फूल खिलने से पहले, तत्पश्चात दो सप्ताह के अंतर पर कम से कम दो बार और छिडकाव करना चाहिए। यह छिडकाव प्रातः काल, जब पत्तियों एवं टहनियों पर ओस की नमी मौजूद हो, करना फायदेमंद होता है। एक पेड़ के लिए लगभग 500 ग्राम गंधक की आवश्यकता पड़ती है। कवकनाशी दवाइयां जैसे डाइनोकैप (1 मिली. प्रति लीटर पानी) का पहला छिड़काव जनवरी–फरवरी में या फूल खिलते समय कर देना चाहिए। कुल 2–3 बार इस फंफूदनाशी का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहि,।

श्यामवर्ण (एंथ्रेकनोज): रोग के लक्षण काले रंग के गोल या अनिश्चित आकार के धब्बों के रूप में नई पत्तियों, टहनियों, फूलों व फलों पर नजर आते हैं। श्यामवर्ण रोग के लक्षण मंजरी के मुख्य अक्ष एवं पार्श्व–शाखाओं पर छोटे व गहरे रंग के धब्बे के रूप में भी दिखाई पड़ते हैं। इस बीमारी से बचाव हेतु जमीन पर पड़े पौधों के अवशेषों जैसे पत्तियां, टहनियां एवं फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। कवकनाषी दवाइयां जैसे बोर्डो मिश्रण (5:5:50) अथवा कॉपर आक्सीक्लोराइड (3 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव जनवरी माह से जून–जुलाई तक करना चाहिए। पहला छिड़काव मंजरियों के आने के पहले और शेष फल लगने पर करना चाहिए। शुरू में दो छिड़काव में एक सप्ताह और बाद में 15 दिन का अंतर होना चाहिए।

शीर्षारंभी क्षय (डाई बैक): इस रोग के मुख्य लक्षण विशेषतः पेड़ों की टहनियों एवं शाखाओं का झुलसना, उनकी सभी पत्तियों का गिर जाना तथा सम्पूर्ण पेड़ का झुलसा हुआ दिखना है। रोग ग्रस्त टहनी से गोंद निकलता है रोग ग्रसित टहनियों की कटाई–छंटाई कर देनी चाहिए। टहनियों की छंटाई करते समय ध्यान रखें कि उन्हें लगभग 7 से 8 सेमी. रोगी स्थान के नीचे से काटे। कटाई के बाद बोर्डो मिश्रण (5:5:50) या कॉपर आक्सीक्लोराइड (3 ग्राम प्रति लीटर पानी) का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहि,।

काली आसिता (सूटी मोल्ड): यह रोग आम पर आक्रमण करने वाले कीटों जैसे आम का फुदका, गुजिया कीट तथा शल्कीय कीट से संबंधित है। ये कीट पेड़ों की पत्तियों और टहनियों पर मीठा स्राव उत्पन्न करते हैं। इस स्राव पर काली फफूंद बड़ी तेजी से वृक्षि करती है। कवक काले रंग के असंख्य बीजाणु बनाता है जो स्राव के कारण पत्तियों पर चिपके रहते हैं। पत्तियों का हरा भाग ढक जाने के कारण प्रकाश संश्लेषण कार्य रूक जाता है। कीटनाशी दवा जैसे इलोसाल (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) या इण्डोसल्फान (1–5 मिली. प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए। इसके बाद एक या दो छिड़काव कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम प्रति लीटर पानी) करना चाहिए। कुल 2–3 छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर देना लाभकारी होता है।

काला सिरा या ऊतकक्षय (ब्लैक टिप): इस रोग को कोयली तथा चिमनी रोग के नामों से भी जाना जाता है। फल के सिरे पर काले धब्बे इस रोग के विशेष लक्षण हैं। यह रोग ईंट के भट्टों से निकलने वाले धुएं में विद्यमान जहरीली गैसों जैसे सल्फर डाइऑक्साइड, एथिलीन तथा कार्बन मोनोआक्साइड के कारण होता है। इस रोग से बचाव हेतु ईंट एवं चूने के भट्टों को बागानों से कम से कम 1.5 से 2.5 किमी. दूर रखना चाहिए। कम से कम 15–18 मीटर ऊंची चिमनियों का इस्तेमाल किया जाना चाहि,। जहां तक संभव हो भट्टों में काम, फल लगने के समय से फल पकने के समय अर्थात मार्च के प्रथम सप्ताह से मई के तीसरे सप्ताह तक बंद कर देना चाहिए। पेड़ों पर सुहागा या कॉस्टिक सोडा 6–8 किग्रा. प्रति हजार लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। कुल तीन छिड़काव की आवश्यकता पड़ती है। पहला छिड़काव

फूल आने के पूर्व, दूसरा छिड़काव फूल खिलते समय तथा तीसरा छिड़काव फल लगने के समय करना चाहिए।

भुनगा कीट (मैंगो हॉपर): भुनगों के नियंत्रण के लिए कार्बेरिल (2 मिली. प्रति लीटर पानी) या क्लोरापायरीफास (5 मिली. प्रति 10 लीटर पानी) या डायमेथोएट (रोगर) (1 मिली. प्रति लीटर पानी) का 15 दिन के अंतर से छिड़काव करना चाहिए।

गुजिया कीट (मिली बग): मादा कीट, अप्रैल–मई में पेड़ों से नीचे उतर कर भूमि की दरारों में प्रवेश कर अण्डे देती है। अण्ड़े भूमि में नवम्बर–दिसम्बर तक सुप्तावस्था में रहते हैं। छोटे–छोटे अवयस्क अण्डों से निकलकर दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में आम के पौधों पर चढ़ना प्रारम्भ कर देते हैं। अच्छी धूप निकलने के समय ये अधिक क्रियाशील होते हैं। बच्चे और वयस्क मादा कीट जनवरी से मई तक बौर व अन्य कोमल भागों से रस चूसकर उनको सुखा देते हैं। दिसम्बर माह में बाग की जुताई करके वृक्ष के तने के आस पास क्लोरपाइरीफॉस चूर्ण (1.5 प्रतिशत) 250 ग्राम प्रति वृक्ष के हिसाब से मिट्टी में मिला देने से अण्डों से निकालने वाले अवयस्क मर जाते हैं। साथ ही साथ पॉलीथीन की 20 सेमी. पट्टी पेड़ के तने के चारों ओर भूमि की सतह से 50 सेमी. ऊंचाई पर दिसम्बर के चौथे सप्ताह में गुजिया के निकलने से पहले लपेटने से उनको वृक्षों पर ऊपर चढ़ने से रोका जा सकता है। पट्टी के प्रयोग से पहले तने पर मिट्टी के लेप को लगाया जाता है। पट्टी के दोनो सिरे सुतली से बांधने चाहिए। इसके बाद थोड़ी ग्रीस पट्टी के निचले घेरे पर लगाने से इस कीट को पट्टी के नीचे से चढ़ने को रोका जा सकता है। अगर किसी कारणवश उपरोक्त विधि न अपनाई गई हो और गुजिया पेड़ पर चढ़ गई हो तो ऐसी अवस्था में मोनोक्रोटोफॉस (5 मिली. प्रति 10 लीटर पानी) अथवा डायमेथो,ट (1.0 मिली. प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए। जैविक कारक भी इस कीट के प्राकृतिक नियत्रण में सहायक पाए गए हैं। परभक्षी, कीट, रोडोलिया फुमिडा, मीनोकइलस सेक्समैक्यूलेटस एवं सुमनियस रेर्नाडाई गुजिया कीट का भक्षण करते हैं।

तना छेदक (शूट बोरर): इस कीट के गिडार पेड़ों के तनों में प्रविष्ट होकर उनके अन्दर के भागों को खाकर नुकसान पहुंचाते हैं। गिडार तने में ऊपर की ओर सुरंग बनाकर बढ़ते जाते हैं। जिसके फलस्वरूप पौधों की शाखाएं सूख जाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए प्रभावित शाखाओं को गिडार तथा प्यूपे सहित काटकर नष्ट कर देना चाहिए। इसके अलावा छिद्रों को साफ कर उनमें कीटनाशी घोल डालकर छिद्रों को बन्द कर इन कीटों का सफलतापूर्वक नियंत्रण किया जा सकता है।

शूटगॉल: इस कीट के बच्चों द्वारा पत्तियों की कलिकाओं से रस चूसने के फलस्वरूप, उनका पत्तियों के रूप मे विकास नहीं हो पाता, बल्कि यह शंखाकार (नुकीले) होकर अन्त में सूख जाते हैं। इस कीट द्वारा निर्मित गाठें साधारणतः सितम्बर–अक्टूबर में देखे जा सकते हैं। नुकीली गांठों के बनने के फलस्वरुप इसमें फूल नहीं आता है। कीट का सफलतापूर्वक नियत्रण, मोनोक्रोटोफॉस (5 मिली. प्रति 10 लीटर पानी) अथवा क्वीनालफॉस (5 मिली. प्रति 10 लीटर पानी) का 15 दिनों के अंतराल पर 2 छिड़काव अगस्त के मध्य से करने से किया जा सकता है। छिड़काव मे एक ही कीटनाशक दवा का दोबारा प्रयोग ठीक नहीं है। इससे कीटों में एक ही दवा को सहन करने की क्षमता हो जाती है।

नीबू की फल मक्खी: फल मक्खी के वयस्क पके हुये फलो मे छेद कर क्षति पहुॅचाते तथा अन्त मे पौधे से गिरने लगते है। नर मक्खी को आकर्षित करने वाले फीरामेन ट्रेप जिसमे 0.1 प्रतिशत मिथाइल यूजीनोल तथा 0–05 प्रतिशत मेलाथियान 25 ट्रेप प्रति है की दर से फलों के पकने से 60 दिन पहले 7 दिन के अन्तराल पर लगाने चाहिए।

पर्ण मोणक: लारवा पत्तियो की निचली सतह को मोड़ देते है। संक्रमित पत्तिया पर्ण शिराओ से अन्दर की तरफ कुंचित होकर सूखने लगती है तथा अन्त मे गिर जाती है। यदि संक्रमण कम हो तो नीम की निम्बोली का रस 4 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए। अधिक आक्रमण होने पर मोनोक्रोतोफॉस 1.5 मिली. अथवा क्युनोलफॉस 2 मिली 1 लीटर का छिड़काव करना चाहिए।

दीमक: दीमक की रोकथाम के लिए क्युनोलफॉस का मृदा मे ड्रेचिंग करना चाहिए तथा भूमि पर पड़ी हुई सड़ी गली पत्तियों, एाखायें, फलों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए।

फाइटोप्थोरा: पौधो मे तना, विगलन, पद विगलन, जड़ विगलन, गमोसिस पर्ण गिरना तथा भूरा सड़न नामक रोग

करती है। तांबा जनित फफूँद नाशी का पर्णीय छिड़काव, मृदा में प्रयोग तथा तने पर पेस्ट बनाकर लगाना चाहिए। एलीट (2–5 ग्राम/लीटर) तथा रिडोमिल एम जेड 72 (2. 75 ग्राम/लीटर) के दो छिड़काव पूरे पादप छत्रक पर 40 दिन के अन्तराल पर मानसून क शुरू होने पर किया जाता है।

चुर्णिल असिता/चुर्णिल फफूँदः सफेद रंग की चूर्ण पत्तियो की दोनो सतहो पर दिखाई देता है। गंधक के चूर्ण (200–250 मेस) भुरकाव अथवा छिड़काव कर इसका नियत्रण किया जा सकता है।

फलो का गिरनाः किन्नो के फलो के गिरने की एक गम्भीर समस्या है। फलो को गिरने से बचाने के लिए एन एन (प्लांनोफिक्स) के 20 पी पी एम (20 मिग्रा/लीटर) अथवा 2–4 डाइक्लोरो फिनाक्सी एसिटिक एसिड (2–4 डी) 20 पी पी एम का छिड़काव करना चाहिए।

तना तथा जड़ गलन रोगः इसमें भूमि की सतह के पास तने का ऊपरी छिलका पीला होकर गलने लगता है और जड़ भी गलने लगती है। पत्तियां सूख जाती हैं और पौधा मर जाता है। इसके उपचार के लिए जल निकास में सुधार और रोग ग्रसित पौधों को तुरन्त उखाड़कर फेंक देना चाहिए। तने के सहारे पौधों की जड़ों पर रीडोमिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर डालने से काफी रोकथाम होती है। ट्राइकोडरमा का प्रयोग करने से पीथीयम व फाइटोफ्थोरा फफूंद से होने वाले रोगों का प्रकोप काफी कम पाया गया है।

डैम्पिंग ऑफ/आर्द्र पतनः नम मिट्टी में नर्सरी में ही छोटे पौधे नीचे से गलकर मर जाते हैं। इससे बचने के लिए बीज बोने से पहले बीज क्यारी को 2.5 प्रतिशत फार्मेडिल्डहाइड घोल से उपचारित करना चाहिए। प्रभावित पौधे को उखाड़कर जला दें या मिट्टी में दबा देना चाहिए।

पर्ण कुंचनः यह रोग जेमिनी विषाणु के कारण होता है। इस रोग के लक्षण केवल ऊपर की नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियां नीचे की तरफ मुड़ जाती है तथा एक प्यालेनुमा आकृति बना लेती है। पर्णवृंत टेढ़े–मेढ़े हो जाते हैं। यह रोग सफेद मक्खी (बेमिसिया टैबेकाई) से फैलता है। सफेद मक्खी जून से लेकर अगस्त माह तक सर्वाधिक सक्रिय रहती है। इस मक्खी को रोग फैलाने से रोकने के लिए इमिडियोक्लोरोपिड की 3 मिली– मात्रा को 10 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करना चाहि,। रोगग्रसित पत्तियों व पौधों को बाग से निकालकर मिट्टी में दबा देना चाहि,। परिपोषी पाधे जैसे मिर्च, टमाटर, तम्बाकू को बागों के पास नहीं लगाना चाहिए।

उपरोक्त दिए गए बिंदुओ को ध्यान में रख कर यदि बागवानी की जाये तो किसान ज्यादा से ज्यादा उत्पादन कर देश की प्रगति में भागीदार बन सकते है।

आम पौध प्रवर्धन की उन्नत विधियां

कन्हैया सिंह, मनीश श्रीवास्तव, जय प्रकाश, अमित कुमार गोस्वामी एवं संजय कुमार सिंह
फल एवं औद्यानिकी प्रौद्यौगिकी संभाग
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–12

आम एक प्रमुख उष्ण कटिबंधीय फल है। जिसका सबसे अधिक उत्पादन भारत में होता है जो कि विश्व के कुल आम उत्पादन का 45.1 प्रतिशत है। आम के पके हुए फल अत्यधिक पौष्टिक एवं स्वादिष्ट होते है। इसमें विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा में पायी जाती है।

पुराने समय में आम का प्रवर्धन बीज द्वारा किया जाता था । परन्तु समय के साथ–साथ कायिक प्रवर्धन विधियों का उपयोग किया जाने लगा। आम की कुछ किस्मों में बहुभ्रूणीयता पायी जाती है जिससे बीजू पौधे भी मातृ पौधों के समान होते हैं। परन्तु आम की इस विशेषता का बहुत अधिक लाभ नहीं लिया जा सका। ज्यादातर क्षेत्रों में परम्परागत तौर पर नर्सरी में भेंट कलम बंधन विधि का उपयोग किया जा रहा है। पिछले कुछ दशकों में अनुसंधान कार्यों से पता चला कि वीनियर कलम बंधन विधि का उपयोग उत्तर तथा मध्य भारत में सफलता के साथ किया जा सकता है। साथ ही साथ समुद्र के किनारे के स्थानों जहॉ वातावरण में अधिक नमी तथा मध्यम तापमान होता है वहॉ प्रांकुर कलम बंधन विधि अत्यन्त उपयोगी है। वर्तमान में मृदु शाखा कलम बंधन विधि का उपयोग देश के उत्तरी तथा दक्षिणी क्षेत्रों में व्यावसायिक स्तर पर उपयोग में लाया जा रहा है साथ ही साथ पॉलीहाउस तथा छायागृहों के प्रयोग से आम प्रवर्धन का कार्य वर्ष के कई महीनों में किया जा सकता है । आज के परिवेश में इस बात की महती आवश्यकता है कि आम के बागवानों को प्रेरित किया जाए कि वो पौधों के प्रवर्धन की उन्नत तकनीकी से अवगत हों ।

मातृ पौधे का चयन

नर्सरी में मातृ पौधों का एक विशिष्ट स्थान होता है तथा नर्सरी की सफलता मातृ पौधों के स्वास्थ्य एवं ओज पर निर्भर करती है। अतः यह आवश्यक है कि अच्छी किस्म के अनुवांशिकी शुद्धता युक्त मातृ पौधों को नर्सरी में लगाया जाय ।

- मातृ पौधे ओजस्वी, स्वस्थ तथा अधिक उपज देने वाले होने चाहिए। साथ ही उनमें नियमित फलन होना चाहिए।
- मातृ पौधों पर किसी प्रकार की बीमारी तथा कीटों का प्रकोप नहीं होना चाहिए ।
- यह अत्यंत आवश्यक है कि मातृ पौधे अनुवांशिकी तौर पर शुद्ध तथा गुणवत्तायुक्त हों।
- मातृ पौधों की खरीद पंजीकृत फार्म, कृषि विश्वविद्यालयों अथवा राजकीय नर्सरी से करना चाहिए।
- क्रय रसीद को संभालकर रखना चाहिए जिससे मातृ पौधों की उत्पत्ति तथा प्रमाणिकता समय पर जाना जा सकता है।
- मातृ पौधों का चयन नर्सरी क्षेत्र में पौधों की मांग के अनुरूप होना चाहिए।

मातृ पौधों का रख–रखाव

नर्सरी की सफलता के लिए मातृ पौधों के साथ–साथ उनके रख–रखाव की भी महती आवश्यकता होती है। इसके लिए मातृ पौधों की नियमित अन्तराल पर सिंचाई, अवस्थानुसार पोषण प्रबंधन तथा कीट एवं रोग प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मातृ पौधों में फूल एवं फल अवस्था को नहीं आने देना चाहिए तथा पौधों को वानस्पतिक अवस्था में ही रखना चाहिए जिससे सांकुर शाखा प्राप्त की जा सके। इसके साथ मातृ पौधों के स्वास्थ्य का नियमित परीक्षण रोगाणुओं व अन्य गुप्त बीमारियों हेतु करने की व्यवस्था करनी चाहिए। मातृ पौधों का पैतृक वंशावली तथा फलन स्वभाव सम्बन्धित सूचनाएं भी रजिस्टर में नोट करके आफिस में रखना चाहिए ।

सांकुर शाखा का चयन

- सांकुर शाखा परिपक्व तथा कम से कम 4–5 माह

पुरानी होनी चाहिए।

- सांकुर काष्ठ जिसका व्यास 0.6 से 1.2 सेंमी हो, अच्छी मानी जाती है।
- सांकुर शाखा पर स्वस्थ पूर्ण विकसित, गोल एवं उभरी कलिकाएं होनी चाहिए।
- गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन हेतु सांकुर शाखा हमेशा स्वस्थ एवं अच्छे पौधों से ही लेना चाहिए।
- सांकुर शाखा किसी भी प्रकार के जीवाणु, कवक एवं विषाणु जनित रोगों से मुक्त होना चाहिए।
- मूलवृन्तों पर कलम बांधने हेतु चयनित सांकुर शाखा सुषुप्तावस्था में होना चाहिए।
- सबसे अच्छी सांकुर शाखा पौधों के केन्द्रीय भाग या छत्रक के निचले भाग से प्राप्त होती है।

सांकुर शाखाओं का संग्रहण

सांकुर शाखा का उचित चयन तथा तैयारी का विभिन्न प्रकार के कलम बंधन में बड़ा महत्व होता है। सांकुर के लिए प्रमुख रूप से शीर्ष पर स्थित 4–5 माह आयु वाली शाखा जिसमें पुष्पन न हुआ हो अच्छी होती है । चयनित सांकुर शाखा को मातृ पौधे से अलग करने से पहले उन पर उपस्थित पत्तियों को पर्णवृन्त छोड़कर काट देते हैं इस क्रिया के 7–10 दिनों बाद सांकुर शाखा को मातृ पौधों से अलग कर कलम बंधन हेतु उपयोग में लाना चाहिए। अगर सांकुर शाखा को दूर स्थान पर भेजना हो तो उन्हें नम मॉस घास में लपेट कर रखना चाहिए ।

मूलवृन्त उगाना

सामान्य तौर पर आम में मूलवृन्त हेतु बीजू पौधों की गुठलियों का प्रयोग किया जाता है। जुलाई, अगस्त के महीनों में आस–पास उपस्थित बौनी, बीमारी मुक्त तथा अधिक उत्पादन देने वाले बीजू पौधों से फलों को प्राप्त कर उनसे गुठलियॉ निकालने के पश्चात् जल्द से जल्द उनकी बुआई की व्यवस्था करनी चाहिए। गुठलियों के भंण्डारण हेतु नमीयुक्त छायादार स्थान में गुठलियों को रखना चाहिए तथा गुठलियों को बालू, बुरादा एवं मिट्टी के मिश्रण से ढक देना चाहिए। गुठलियों की बुआई से पूर्व पानी में डुबोना चाहिए और जो गुठलियां पानी की सतह पर तैरती रह जाए उन्हें छांटकर निकाल देना चाहिए क्योंकि उनमें जीवन क्षमता समाप्त हो चुकी होती है। आम के फलों की परिपक्वता के अनुसार मई से अगस्त महीने में की जाती है । इसके लिए गोबर की सड़ी खाद मिश्रित, उंची क्यारियों का प्रयोग किया जा सकता है। जब पौधों की आयु दो महीने की हो जाए तब उन्हें पॉलीहाउस में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। छोटे प्रत्यारोपित पौधों की सिंचाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए। शुरूआती समय में पत्तियों को खाने वाले कीटों से छोटे पौधों को बचाना चाहिए। इन पौधों को 6–8 महीने तक बढ़ने देना चाहिए और जब तनें की मोटाई पेंसिल के बराबर हो जाए तो उनमें कलम बांधन का कार्य शुरू करना चाहिए ।

मूलवृन्त का चयन

- मूलवृन्तों में उचित ओज एवं विकास होना चाहिए।
- मूलवृन्त मृदा जनित रोगों तथा कीटों के प्रतिरोधी होनी चाहिए।
- मूलवृन्तों को विषाक्त लवणों जैसे सोडियम, मैग्नीशियम तथा कैल्शियम के प्रति सहनशील होना चाहिए।
- मूलवृन्तों को विभिन्न प्रकार की सांकुर शाखाओं के साथ ससंगतता होनी चाहिए।
- मूलवृन्तों को आसानी से प्रवर्धित किया जा सकता हो।
- मूलवृन्तों को उत्परिवर्तित के प्रति संवेदनशील नहीं होना चाहिए।
- मूलवृन्तों की आयु 6 से 8 महीने होनी चाहिए। परन्तु किसी भी स्थिति में एक वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- मूलवृन्तों की मोटाई सामान्यतौर पर 1 सेंमी होनी चाहिए ।

प्रवर्धन विधियां

विकास की अवस्था तथा प्रवर्धन के समय के अनुसार मूलवृन्तों का अधिकाधिक उपयोग निम्नलिखित प्रवर्धन विधियों से किया जा सकता है।

वीनियर कलम बंधन

यह एक महत्वपूर्ण एवं आम प्रवर्धन की व्यावसायिक विधि थी परन्तु इसका प्रचलन अब धीरे–2 कम हो रहा है।

यह एक आसान विधि है जिसमें अधिक सफलता मिलती है। आठ महीने से एक वर्ष आयु के मूलवृन्तों का उपयोग इस विधि में किया जाता है। इस विधि में मूलवृन्त को 20 सेंमी0 की ऊँचाई से 4.5 सेंमी0 नीचे की तरफ तथा 0.5 सेंमी0 अन्दर की तरफ चीरा लगाते हैं। चीरे के आधार पर एक और छोटा चीरा लगाकर छाल के साथ लकड़ी को बाहर निकाल लेते हैं जिससे की सांकुर शाखा अच्छी प्रकार खॉच में सेट हो जाय। सांकुर शाखा जो 4–5 माह पुरानी हो उसके आधार पर एक तरफ तिरछा चीरा तथा दूसरी तरफ एक सीधा चीरा लगाते हैं तथा उसको मूलवृन्त में बनाये गये चीरे में इस प्रकार प्रतिस्थापित करते हैं कि दोनों अच्छी प्रकार सेट जायें। इसके बाद 1.5 सेंमी0 चौड़ी तथा 200 गेज मोटी पॉलीथीन पट्टिका से कसकर बॉध देते हैं । इस विधि में भी सांकुर शाखा जो जिनकी मोटाई मूलवृन्त की मोटाई के समान हो उनके पत्तियों को 7–10 दिन पहले तोड़ दिया जाता है। मूलवृन्त तथा सांकुर शाखा का यूनियन 40–45 दिन में हो जाता है इसके बाद मूलवृन्त को बंधन के उपर से काट देते हैं ।

गुण

- यह एक आसान एवं लाभप्रद विधि है ।
- इस विधि में सफलता ज्यादा मिलती है ।
- स्व–स्थाने बाग लगाने के लिए यह विधि उपयुक्त है ।

अवगुण

- इस विधि में पौधे काफी देर से तैयार होते हैं ।
- इस विधि में कुशल माली की आवश्यकता होती है।

प्रांकुर कलम बंधन

प्रांकुर कलम बंधन एक ऐसी प्रवर्धन तकनीक है जिससे कम समय में अधिक से अधिक पौधे बनाए जा सकते हैं। इस विधि में काफी कम आयु का मूलवृन्त उपयोग में लाया जाता हैं। फलों से निकाली गई गुठलियों को नर्सरी की क्यारियों में बो देते हैं। अंकुरण के पश्चात् जब पौधे का रंग कॉपर के रंग का हो तब गुठली सहित पौधों को निकाल कर 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम कवकनाशी से 5 मिनट के लिए उपचारित करते हैं। इन पोधों के शीर्ष को 6–8 सेंमी0 ऊँचाई पर काट देते हैं तथा प्रांकुर तने पर 2–3 सेंमी0 लम्बा चीरा तने के मध्य में लगाते हैं। साथ ही साथ 4–5 माह परिपक्व सांकुर शाखा को कलम की तरह कटाव करके प्रांकुर तने में लगे चीरे में प्रतिस्थापित करते हैं तथा कलम बंधन में प्रयोग में लाई जाने वाली पॉलीथीन की पट्टियों से कस कर बांध देते हैं। इन कलमी पौधों को पॉलीबैग जिसमें 1:1:1 अनुपात का पाटिंग मिश्रण भरा हो लगा देते हैं। पॉलीबैग में लगे पौधों को छायादार स्थान पर रखते हैं जिससे तेज वर्षा या गर्मी से बचाया जा सके। जब सांकुर शाखा में फुटाव होने लगता है तथा नई निकली पत्तियों का रंग गहरा हरा हो जाता है तब पॉलीथीन की पट्टियों को निकाल देते हैं। इन सभी प्रक्रियाओं में 45–50 दिन का समय लग जाता है। मूलवृन्त से निकलने वाले फुटाव को अविलम्ब तोड़ देना चाहिए। इस विधि के लिए जून का महीना अच्छा होता है। यदि गुठलियों की उपलब्धता सुनिश्चित हो तो इस विधि का प्रयोग अगस्त माह के प्रथम सप्ताह तक भी किया जा सकता है ।

गुण

- आर्थिक दृष्टिकोण से इस विधि में कम लागत लगती है, क्योंकि मूलवृन्तों को वर्ष भर के रख–. रखाव की आवश्यकता नहीं होती है ।
- इस विधि में कम समय में पौधे तैयार किए जा सकते हैं ।
- पौधों की जल्द आपूर्ति की जा सकती है ।

अवगुण

- प्रवर्धन हेतु कुशल मालियों की आवश्यकता होती है ।
- चूंकि लगभग दो सप्ताह के मूलवृन्तों का इस विधि में प्रयोग होने के कारण एक साथ अधिक संख्या में पौधे तैयार करने में कठिनाई होती है।
- मूलवृन्तों की आयु अधिक होने पर सफलता कम हो जाती है।

मृदु शाखा कलम बंधन

यह प्रवर्धन विधि विभिन्न क्षेत्रों में व्यावसायिक स्तर पर अपनाई जा रही है। कलम बंधन हेतु 6–10 माह के मूलवृन्तों का उपयोग किया जाता है। अन्य विधियों की

तरह इस विधि में भी सांकुर शाखा जिनकी मोटाई मूलवृन्त की मोटाई के समान हो उनके पत्तियों को 7–10 दिन पहले काट दिया जाता है। इस विधि में सांकुर शाखा के निचले भाग के पच्चर के आकार में काटते हैं तथा मूलवृन्त में 3–0–4.5 सेंमी0 लम्बा चीरा लगाते हैं। सांकुर शाखा को मूलवृन्त में प्रतिस्थापित करके 1.5 सेंमी0 चौड़ी 200 गेज मोटी पॉलीथीन पट्टिका से कसकर बांध देते हैं। इस विधि की सफलता अधिक आर्द्रता तथा मध्यम तापमान वाले वातावरण (जुलाई से सितम्बर) में अधिक होती है।

गुण

- अधिक सफलता के साथ आसान विधि ।
- कम समय में अधिक कलम बांधे जा सकते हैं ।
- यह एक व्यावसायिक प्रवर्धन विधि है ।

अवगुण

- इस विधि में कौशल की आवश्यकता होती है ।
- कुछ किस्में जैसे हिमसागर में इस विधि से प्रवर्धन करने पर कम सफलता देखी गई है ।

पौधों की देखभाल

पॉलीबैग में लगाए गए नये पौधे कीटों, बीमारियों तथ खरपतवारों से मुक्त होने चाहिए। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में सूर्य के प्रकाश की तीव्रता कभी–कभी नर्सरी में लगे नये पौधों के लिए हानिकारक हो सकता है। मुख्य रूप से ऐसे दोनों क्षेत्रों में मार्च के अन्त से अप्रैल माह में नये पौधों को नुकसान पहुंचता है। इससे बचाव हेतु पौधों के उपर छाया की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए पुआल, पॉलीथीन तथा छायादार जाली का उपयोग किया जा सकता है। साथ ही साथ फरवरी माह से लेकर मानसून के आगमन तक नये पौधों की सिंचाई 4–6 दिनों के नियमित अन्तराल पर करनी चाहिए। कलमी पौधों को साफ स्वच्छ स्थान पर रखना चाहिए और नियमित अन्तराल पर नयी कलिकाओं के निकलने तथा वृद्धि हेतु निरीक्षण करना चाहिए। जब कलम मिलन अच्छी तरह से हो जाए तो पॉलीथीन की पट्टियों को निकाल देना चाहिए जिससे कलमी पौधों में वृद्धि तथा विकास अच्छी प्रकार से हो सके। कलम मिलान भाग के नीचे से प्रस्फुटित हेाने वाली कलिकाओं को तोड़ देने से कलमी पौधों के वृद्धि में लाभ होता है।

तालिका : आम कलम बंधन के लिए मानक

		प्रवर्धन विधि		
क्रम सं0		प्रांकुर कलम बंधन	मृदुशाखा कलम बंधन	वीनियर कलम बंधन
1	मूलवृन्त स्थित	सीधी तथा ओजस्वी	सीधी तथा ओजस्वी वृद्धि	सीधी तथा ओजस्वी
2	मूलवृन्त उगना	पॉलीथीन बैग	पॉलीथीन बैग	पॉलीथीन बैग
3	पॉलीथीन का आकार	20X10सेंमी / 10X25सेंमी	20 X10सेंमी / 10X5 सेंमी	20X10सेंमी / 10 X5 सेंमी
5	मूलवृन्त की आयु	10 से 15 दिन	7–10 माह	3–5 माह
6	मूलवृन्त का व्यास	0.2 –0.3 सेंमी0	0.5 –0.7 सेंमी0	0.5 –0.7 सेंमी0
7	सांकुर शाखा की आयु	3–4 माह पुरानी	3–4 माह पुरानी	3–5 माह पुरानी
8	सांकुर शाखा की मोटाई	0.3 –0.4 सेंमी0	0.5 –0.7 सेंमी0	0.5 –0.7 सेंमी0
9	सांकुर षाखा की लम्बाई	10–15 सेंमी0	10–15 सेंमी0	15–18 सेंमी0
10	पौधे की उंचाई	20 सेंमी0	60–65सेंमी0	60–70सेंमी0
11	तने की मोटाई	1.5 –2.0 सेंमी0	2.5–3.0 सेंमी0	2.5–3.0 सेंमी0
12	कलम मिलन की उंचाई	5–7 सेंमी0	20–26 सेंमी0	30–40 सेंमी0
13	कलम बंधन का समय	जून – अगस्त	मई – सितम्बर	मई – सितम्बर
14	मिलान परिपक्वता का समय	40–50 दिन	45–50 दिन	55–65 दिन

कद्दूवर्गीय सब्जियों की लाभकारी खेती के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियां

हर्षवर्धन चौधरी, जोगेंद्र सिंह, ऐ डी मुंशी, आर.के. यादव, एवं भोपाल सिंह तोमर
शाकीय विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

कद्दूवर्गीय सब्जियों में लगभग 90 प्रतिशत तक पानी की मात्रा होती है जिससे यह अधिक सुपाच्य होता है तथा इसे कम केलोरी वाले खाद्य पदार्थ के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। इनका प्रयोग भारतीय खाने में सब्जियों, सांभर, सलाद, रायता, मिठाई इत्यादि के रूप में किया जाता है। इनमें अनेक आवश्यक विटाामिन तथा खनिज तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते है जो पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है तथा हमें स्वस्थ रखने में सहायक सिद्व होते है। कद्दूवर्गीय फसलों में अधिक फसल उत्पादन के लिये इन फसलों को विभिन्न प्रकार के जैविक तनावों मुख्यतः इनमे लगने वाले हानिकारक कीटो वं बीमारियों के प्रकोप से बचाना अति आवश्यक होता है।

खेत की तैयारी: कद्दूवर्गीय फसलों के सफल उत्पादन के लिए रेतीली–दोमट मृदा उपयुक्त है जिसका पी.एच. मान 6.0 से 6.5 तथा उच्च कार्बनिक पदार्थ युक्त एवं उपजाऊ होनी चाहिए। उच्च कार्बनिक पदार्थ युक्त खेत उत्पादन के साथ–साथ उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ाने में भी सहायक होती है। अच्छी प्रकार से सड़ी हुई 20–25 टन गोबर की खाद खेत की तैयारी से 25–30 दिन पहले खेत में डालनी चाहिए। मृदा में किसी भी पोषक तत्व की कमी को जानने के लिए मिट्टी परीक्षण करायें तथा जाँच के अनुसार उर्वरक एवं सूक्ष्म तत्वों का इस्तेमाल करे। खेत समतल और भुरभुरा तथा ढेलों, खरपतवारों और पुरानी फसल के अवशेषों से मुक्त होने चाहिए। खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से, बाद में 3–4 जुताई देशी हल से करके और पाटा चला कर खेत को समतल तथा मिट्टी को भुरभुरा बना लेते हैं। जिन खेतों में फुजेरियम विल्ट की समस्या विगत वर्षों में आई हो उनमे इन फसलों की खेती तीन–चार साल तक अन्य फसल चक्र को अपनाने के बाद करनी चाहिए ।

उर्वरक व खाद: खाद व उर्वरकों का प्रयोग मृदा की जाँच के अनुसार करना चाहिए। कच्ची गोबर की खाद का प्रयोग इन फसलो के लिए नहीं करना चाहिए क्योंकि इनका प्रयोग करने से मृदा में दीमक का प्रकोप हो जाता है। ज्यादातर बेल वाली सब्जियों में खेत की तयैारी के समय 15–20 टन/हक्टेयर गोबर की अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद व 80 कि. ग्र. नत्रजन, 60 कि. ग्र. फास्फारेस तथा 60 कि. ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है । नत्रजन की आधी मात्रा व फास्फारेस तथा पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय डालनी चाहिए। शेष नत्रजन की मात्रा दो बार टॉप ड्रेसिंग के द्वारा बुआई के 30 एवं 45 दिनों बाद खेत में दे।

उन्नत किस्में व संकर प्रजातिया

खीरा: पूसा उदय, पूसा बरखा, पोइनसेट तथा पूसा संयोग।

लौकी: पूसा नवीन, पूसा समृद्वि, पूसा हाइब्रिड–3 (बेलनाकार), पूसा संदेश (गोल), पूसा सतुंष्टि (नासपाती आकार)।

करेला: पूसा औषधि, पूसा दो मौसमी, पूसा विशेष, पूसा हाइब्रिड–1, पूसा हाइब्रिड–2, पूसा रसदार, पूसा पूर्वी।

चिकनी तोरइ– पूसा सुप्रिया, पूसा स्नेहा, पूसा श्रेष्ठा।

धारीदार तोरइ– पूसा नूतन।

चप्पन कद्दू : पूसा पसंद, पूसा अलकांर, आस्ट्रेलियन ग्रीन।

कद्दू : पूसा विश्वास, पूसा विकास, पूसा हाइब्रिड–1।

पेठा– पूसा श्रेयाली, पूसा उर्मी, पूसा उज्जवल, पूसा सब्जी पेठा–1।

खरबूजा: पूसा मधुरस, पूसा मधुरिमा, पूसा सरदा।

तरबूज: शुगर बेबी, अर्का मानिक, अर्का आकाश, अर्का ऐश्वर्य, अर्का मुथु, अर्का मधुरा (बीज रहित) ।

टिंडा: पूसा रौनक, पजांब टिडां, अर्का टिडां।

ककड़ी: पूसा उत्कर्ष।

बीज बुआई: गर्मी की फसल के लिए मध्य फरवरी का

समय तथा बरसात के मौसम में जून के अन्त से जुलाई माह कद्दूवर्गीय सब्जियों की बुआई के लिए सर्वोतम होता है। खेत में लगभग 45 सें. मी. चौड़ी तथा 30–40 सें. मी. गहरी नालियां बना लें। बुआई से पहले नालियों में पानी लगा दें। जब नाली में नमी की मात्रा बीज बुआई के लिए उपयुक्त हो जाए तो बुआई के स्थान पर मिट्टी भुरभुरी करके बीज बोएं। बुआई से पुर्व बाविस्टिन अथवा थीरम 2 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. की दर से बीजोपचार करे।

बीज दर: खीरा 1.5–2.0 कि. ग्रा., लौकी 4–5 कि. ग्रा. करेला 5–6 कि. ग्रा., कद्दू 3–4 कि. ग्रा., तोरई 5.0–6.0 कि. ग्रा., चप्पन कदद् 5–6 कि. ग्रा., खरबजू 2.5–3.0 कि. ग्रा., तरबजू 4.0–5.0 कि. ग्रा, टिडां 4–5 कि. ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की दर से इस्तेमाल करे।

बुआई की दूरी: खीरा में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 1.5 मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30–45 से.मी. रखें, लौकी में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 3 मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 0.5 मी. एवं करेले में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 1.5–2.5 मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 0.5 मी. रखें। चिकनी तोरई एवं धारीदार तोरई के लिए 2.5 मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी तथा 45–50 से.मी. पौधे से पौधे की दूरी पर बुआई करें। खरबूज एवं तरबूज के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 2.5 मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 0.5 मी. रखते हुए बुआई करें।

नदी तट पर कद्दूवर्गीय फसलों की बुवाई: कद्दूवर्गीय फसलें जैसे खरबूज, तरबूज, लौकी, ककड़ी व सीताफल आदि की बुवाई के लिए नदी तट पर नवम्बर माह में गड्ढे तैयार करें। सड़ी हुई गोबर की खाद 10–15 कि.ग्र. प्रति गड्ढा मिलाए तथा गड्ढे पूर्व–पश्चिम दिशा पंक्ति बद्ध तरीके से 50–60 सें.मी. चौड़ी तथा नदी के जल स्तर के हिसाब से 45–90 से. मी. गहरे बना लें। बीजों को बुवाई से पूर्व सूती कपडे की थेलियों में लपेट कर बाविस्टिन (1 ग्रा. प्रति लीटर पानी) के घोल में 4–5 मिनट तक भिगो कर रखें तथा इन बीजों को किसी मिट्टी के बर्तन में रात भर अंकुरित होने के लिए रखे। 2–3 अंकुरित बीजों की बुवाई प्रत्येक गड्ढे के हिसाब से करे। बुवाई के समय पाला पड़ने की सम्भावना पर गड्ढों को सरकंडा घास से ढक दें। यह घास फसल को दिसम्बर–जनवरी के माह में पाले से बचाने में लाभप्रद होती है। फरवरी के पहले सप्ताह पर घास को चैनल के उपर से हटा दे।

सिंचाई: जब भी मृदा मे नमी की कमी हो सिंचाई करनी चाहिये। सामान्यतः कद्दूवर्गीय सब्जियों में 5–7 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिऐ। सिचांई व निराई–गुड़ाई नालियों में ही करें।

खरपतवार नियंत्रण: गर्मी के मौसम में कद्दूवर्गीय सब्जी फसलो की अच्छी बढ़वार व अधिक उपज के लिए आरंभिक अवस्था में खरपतवारों का नियंत्रण करना अत्यधिक आवश्यक है। ये खरपतवार फसलों में शुरआती 4–6 सप्ताह तक अधिक नुकसान करते है। इस अवस्था में खरपतवार कद्दूवर्गीय फसलों से पानी, प्रकाश व पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता करते हैं। इसके साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के हानिकारक कीट व बिमारियों को भी शरण देते हैं जिससे इन फसलों की उपज में गिरावट आ सकती है एवं उपज लगभग 20–80 प्रतिशत तक कम हो सकती है। पहली दो सिंचाई करने के बाद में हल्की निराई गुडाई करके इनको निकाला जा सकता है। रासायनिक खरपतवार नियन्त्रण के लिए पेन्डीमिथेलीन (30 ई.सी.) 400 मि.ली. को 200 ली. पानी में घोलकर प्रति एकड रोपाई से पहले छिड़काव करें।

रोग व कीट प्रबंधनः

चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू) : पत्तियों की उपरी तथा निचली सतह पर सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। पत्तियाँ पिली पड़ जाती हैं तथा सूख जाती हैं एवं पोधे की वृद्धि रुक जाती है।

प्रबंधनः कैराथेन 1 ग्राम प्रति ली. पानी अथवा बाविस्टीन 2 ग्राम प्रति ली. पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें।

मृदु रोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू): पत्तियों के उपरी भाग पर पीले धब्बे तथा निचले भाग पर रुई के समान कवक जाल की वृदि एवं बैंगनी रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। यदि गर्मी के मौसम में अचानक बरसात हो जाये तो इस बीमारी के फैलने की संभावना अधिक होती हैं तथा हमें सावधानी के तौर पर कवक नाशी का छिड़काव कर देना चाहिए।

प्रबंधनः इसके रोकथाम के लिए डाईथेन एम.–45 या रिडोमिल के 1.5–2 ग्राम प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करे।

फ्यूजेरियम विल्ट : पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं, जड़

के नजदीक तना फटने लगता हैं तथा पूरा पौधा जड़ से सुख जाता हैं।

प्रबंधनः कैपटाफ 2. ग्रा./लीटर अथवा 1 ग्राम कार्बन्डाजिम + 1 ग्राम मैन्कोजेब /लीटर पानी में घोल बनाकर जड़ों में ड्रेन्चिंग करें। फसल बदल–बदलकर बोएं तथा 3 साल के फसल चक्र को अपनाए।

विषाणु रोगः मुख्य रूप से एफिड, थ्रिप्स व सफेद मक्खियों द्वारा फैलता है, पत्तियों पर पीले धब्बे पड़ना, सिकुड़ना, पीली हो कर सूख जाना तथा फलों पर हल्की से लेकर मस्सेदार वृद्वि दिखाई देना, छोटे व टेड़े मेढे होना आदि प्रमुख लक्षणों में से हैं ।

प्रबंधनः

1- खरपतवार नियंत्रित करें तथा वायरस के संवाहक कीट को नियंत्रण में रखें।

2- इमीडाक्लोपरीड अथवा स्पिनोसैड 1 मि.ली./3 लीटर व फिप्रोनिल 2 मिली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 10 से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

3- 10 से 15 पीला ट्रेप प्रति हेक्टेयर में प्रयोग करें ।

4- नीम बीज अर्क (5 प्रतिशत) या बी.टी. 1 ग्राम/लीटर या 45 ,स–सी– 1 मि–ली–/4 लीटर का छिडक़ाव करे ।

लाल कद्दू भृंग (रेड पम्पकिन बीटल): यह कीट फसल की प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियों का खाता है। वयस्क कीट पोधो के पत्ते टेढे मेढे करके छेद करते हैं जबकि शिशु पोधो की जडों भूमिगत तने व भूमि से सटे फलों तथा तनों को नुकसान पहुचाते है ।

प्रबंधन

1- फसल खत्म होने पर बेलो को खेत से हटाकर नष्ट कर दें ।

2- फसल की अगेती बुवाई से कीट के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

3- सतंरी रंग के भृंग को सुबह के समय इकट्ठा करके नष्ट कर दें।

4- इनसे बचाव के लिए फसल पर कार्बोसल्फान नामक कीटनाशी का 1.5 से 2.0 मिली. प्रति ली. पानी की दर से घोल बनाकर सुबह के समय छिड़काव करे।

5- भूमिगत शिशुओ के लिए, क्लारेपोयरीफॉस 20 ई. सी. 2.5 लीटर/हे. हल्की सिचांई के साथ इस्तेमाल करे

फल मक्खीः यह मक्खी फलों पर अण्डे देती है। बाद में लार्वा फलों में घुसकर उन्हें अन्दर से खाते रहते हैं।

प्रबंधनः

1- खेत की निराई करके प्युपा को नष्ट कर दें

2- ग्रसित फलों को भी एकत्रित करके नष्ट कर दें

3- मखियों को आकर्षित कर मारने के लिए मीठे जहर, जो इमिडाक्लोप्रिड अथवा स्पिनोसैड 1 मि.ली./3 लीटर तथा 1 प्रतिशत चीनी/गुड (25 ग्राम/लीटर) से बनाया जा सकता है का 50 लीटर/हक्टेयेर की दर से छिडक़ाव करें ।

4- फल मक्खी के नरो को आकर्षित करने के लिए 10 से 15 फेरोमैन ट्रेप (मिथाइल युजिनोल) प्रति हेक्टेयर का प्रयोग भी किया जा सकता है।

5- इस कीट से बचाव हेतु बेलों पर मेलाथियान 2.0 मि.ली./लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। इससे बचाव के लिए प्रयोग करना चाहिए।

उपज एंव तुड़ाई उपरान्त प्रबंधनः

- खीरा, घीया, तोरई, करेला व कद्दू के फल कच्चे व मुलायम हों तब तुड़ाई करें।
- फलों की तुड़ाई डंठल सहित (4–5 सें.मी.) चाकू या कैची की सहायता से करें।
- खीरा 120–150 क्विटंल, लौकी 250–400 क्विटंल, करलेा 75–120 क्विटंल, कद्दू 250–500 क्विटंल, तोरई 100–130 क्विटंल, चप्पन कद्दू 50–60 क्वि. टंल, खरबजू़ा 150–200 क्विटंल, तरबजू 250–300 क्विटंल तथा टिडां 80–100 क्विटंल प्रति हेक्टेयर तक उपज हो जाती है ।
- फलों के रगं, आकार, वजन व आयतन के आधार पर श्रेणीकरण करके पैकिगं करें।
- लौकी के फलों को अखबार में लपेट कर प्लास्टिक क्रेट में रख कर बाजार ले जाने से फलों की गुणवत्ता अच्छी रहती है।

कृषि सिंचाई हेतू लवणीय भू–जल का उचित प्रबंधन

डॉ. धारा सिंह गुर्जर, श्रीमति रोजिन के.जी., डॉ. खजांची लाल एवं डॉ. रविन्द्र कौर
जल प्रौद्योगिकी केन्द्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

लवणीय जल के प्रयोग से अंकुरण में कमी आती है। पौधों की आरम्भिक अवस्था में बढ़वार कम होती है और वे छोटे रह जाते हैं। अतः हम लवणीय जल की उचित प्रबंधन विधियाँ अपनाकर एवं कुछ आवश्यक दिशा निर्देशों का पालन कर, इसे कृषि में सुरक्षित रूप से लम्बे समय तक प्रयोग कर सकते हैं।

लवणीय जल की प्रबंधन विधियाँ

कृषि में लवणीय जल का सुरक्षित उपयोग करने हेतु निम्नलिखित प्रबंधन विधियाँ अपनानी चाहिए।

फसल प्रबंधनः

उचित फसल प्रबंधन के लिए हमें सर्वप्रथम फसलों का चुनाव करना चाहिए ओर इसके लिए हमें मृदा एवं जल का प्रयोगशाला में परीक्षण करना चाहिए। तत्पश्चात् मृदा गठन, जल में उपस्थित लवणता का स्तर एवं क्षेत्र की औसत वार्षिक वर्षा के आधार पर एवं तालिका–1 में दिये गये दिशा निर्देशों के अनुसार हम लवण संवेदी, लवण अर्द्धसहनशील, लवण सहनशील फसल की उपयुक्तता का पता लगा सकते हैं। इसके बाद तालिका 2 में दी गई लवण संवेदी, अर्द्ध सहनशील, सहनशील फसल की सूची के अनुसार उपयुक्त फसल का चुनाव कर सकते है। उपयुक्त फसल के चुनाव के बाद हमें उस फसल की अधिक लवण सहन करने वाली किस्मों का चुनाव तालिका 3 के अनुसार करना चाहिए।

तलिकाः 1 लवणीय जल का कृषि सिंचाई में सुरक्षित उपयोग हेतू दिशा–निर्देश

मृदा गठन (प्रतिशत क्ले)	फसल की लवण सहनशीष्णुता	विभिन्न क्षेत्रों की औसत वार्षिक वर्षा के अनुसार जल की वैद्युत चालकता (डेसीसीमन प्रति मीटर) की अधिकतम सीमा		
		औसत वार्षिक वर्षा 350 मिलिमीटर से कम	औसत वार्षिक वर्षा 350 से 550 मिलिमीटर तक	औसत वार्षिक वर्षा 550 से 750 मिलिमीटर तक
महीन (क्ले की मात्रा 30 प्रतिशत से अधिक)	संवेदी फसल	1.0	1.0	1.5
	अर्द्धसहनशील फसल	1.5	2.0	3.0
	सहनशील फसल	2.0	3.0	4.5
मध्यम महीन (क्ले की मात्रा 20–30 प्रतिशत)	संवेदी फसल	1.5	2.0	2.5
	अर्द्धसहनशील फसल	2.0	3.0	4.5
	सहनशील फसल	4.0	6.0	8.0
मध्यम मोटी (क्ले की मात्रा 10–20 प्रतिशत)	संवेदी फसल	2.0	2.5	3.0
	अर्द्धसहनशील फसल	4.0	6.0	8.0
	सहनशील फसल	6.0	8.0	10.0
मोटी (क्ले की मात्रा 10 प्रतिशत से कम)	संवेदी फसल	–	3.0	3.0
	अर्द्धसहनशील फसल	6.0	7.5	9.0
	सहनशील फसल	8.0	10.0	12.5

तलिकाः 2 लवणीय जल के प्रति संवेदी, अर्द्ध–सहनशील, सहनशील फसलों की सूची

लवण संवेदी फसल	लवण अर्द्धसहनशील फसल	लवण सहनशील फसल
मसूर, चना, सेम, मटर, ग्वार,	धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, जई, बरसीम, अरहर, मूंग, सूरजमूखी, अरण्डी, तिल, अलसी, रिजका, लोबिया, टमाटर, मूली, बांकला, बंदगोभी, फूलगोभी, खीरा, शकरकन्द, कद्दू, आलू, प्याज, गाजर, अनार, अंगूर, अमरूद्ध, आम, केला, नींबू, संतरा, नाशपाती एवं सेब	जौ, ढैंचा, चकुन्दर, तम्बाकू, सरसों, कपास, गेहूँ, गन्ना, तारामीरा, साल्ट ब्रुश, दूबघास, रोड़सघास, शलजम, शकरकन्द, पालक, खजूर, नारियल

तालिकाः 3 प्रमुख फसलों की लवण सहनशील किस्में

फसल	**प्रमुख विकसित किस्में**
धान	सीएसआर 13, सीएसआर 23, सीएसआर 27, सीएसआर 36
गेहूँ	डब्ल्यूएस 157, केआरएल 1 . 4, केआरएल – 19, राज 2560, राज 3077
सरसों	सीएस 52, सीएस 54, पूसा बोल्ड
चना	करनाल चना
बाजरा	एचएचबी 60, एमएच 331
कपास	डीएचवाई 286, सीपीडी 404, जीडीएच 9
ज्वार	सीएसएच 11, एसपीएच 296, 488, एसवीपी 475, 881, 678
जौ	रत्ना, आरएल 345, आरडी 103, के 169
कुसुम	भीमा, सी 83, ए 1
मूँगफली	केवीजी 87189, 86309
मक्का	विजया, डेक्कन 103

सिंचाई प्रबंधन

अच्छी गुणवत्ता वाला जल सीमित मात्रा में उपलब्ध होने पर लवणीय जल के साथ मिलाकर सिंचाई करने से अधिक उपज मिलती है। साथ ही लवणीय एवं अच्छी गुणवत्ता वाले जल का चक्रीय उपयोग भी लाभदायक होता है। लवणीय भू–जल वाले क्षेत्रों में यदि नहरी जल भी उपलब्ध हो तो फसलों की प्रारम्भिक अवस्थाओं में एवं फूल बनने के समय नहरी जल द्वारा सिंचाई करने से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। वर्षा के पानी का भूमि में अधिक संग्रह करना चाहिए। सूक्ष्म सिंचाई पद्धतियां जैसे बूंद–बूंद सिंचाई फववारा सिंचाई आदि का अधिक प्रयोग करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

लवणीय जल से सिंचाई करने पर हमें सामान्य से 25 प्रतिशत अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग करना चाहिए और यदि लवणीय जल में क्लोराइड़ की मात्रा 70 प्रतिशत से अधिक हो, तो उसमें 50 प्रतिशत अतिरिक्त फॉस्फोरस का प्रयोग करना चाहिए। मृदा की उर्वरकता को बनाए रखने के लिए उसमें समय–समय पर गोबर की खाद एवं हरी खाद का भी प्रयोग करना चाहिए।

अतः इस प्रकार हम जल एवं मृदा गुणवत्ता की जांच कराकर एवं उचित दिशा निर्देशों का पालन करते हुए उपयुक्त प्रबंधन विधियों अपनाकर हम लवणीय जल का कृषि सिंचाई हेतु सुरक्षित एवं सतत् उपयोग कर सकते हैं

मृदा स्वास्थ्य बनाये रखने हेतु मृदा परीक्षण क्यों आवश्यक ?

विनोद कुमार शर्मा, कपिल आत्माराम चोभे, सर्वेन्द्र कुमार एवं जे. पी. एस. डबास

मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

देश के कृषि उत्पादन में पिछले कुछ दशकों से अभूतपूर्व क्रान्ति आई है। फसलों की अधिक उपज देने वाली प्रजातियों का किसानों द्वारा प्रयोग इसका मुख्य कारण है। जिससे खाद्यान्नों का उत्पादन वर्ष 2011–12 में 25.9 करोड टन प्राप्त किया जा सका। आज हमारा दो आवश्यकता की पूर्ति करने में सक्षम है बल्कि निर्यात करने की स्थिति में भी है। इन अधिक उपज क्षमता वाली प्रजातियों के द्वारा पोषक तत्वों का मिट्टी से अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में ग्रहण किया जाता है जो कि मृदा उर्वरता की ह्रास का प्रमुख कारण है। जहाँ वर्ष 1950 में केवल नाइट्रोजन की कमी थी लेकिन आज भारतीय मृदायें बहु पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाष, सल्फर, जस्ता, लौहा, मैंगनीज, बोरोन तथा मोलिब्डेनम) की कमी से ग्रसित हैं विशेष रूप से ऐसे स्थानों पर जहां उर्वरकों के साथ–साथ कार्बनिक खादों का प्रयोग कम अथवा बिल्कुल नहीं किया गया वहां तत्वों की यह कमी बहुत ज्यादा हुई है। यही नही, उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग भी इसके लिए काफी हद तक जिम्मेदार है।

केवल भारत ही नहीं बल्कि विश्वस्तर पर खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता बढती हुई जनसंख्या के कारण निरन्तर घट रही है इसको रोकने के लिए खाद्यान्नों की उपज में निरन्तर बढोत्तरी अत्यन्त आवश्यक है जिसे उर्वरकों तथा अन्य उपायों के साथ–साथ कार्बनिक खादों का समुचित प्रयोग करके प्राप्त किया जा सकता है।

मृदा परीक्षण का उददेश्य ?

फसलों की नवीनतम किस्मों की आवश्यकतानुसार मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बहुत आवश्यक है। अधिकांश किसान इस बात का ध्यान नहीं रखते कि जिन उर्वरकों का वे प्रयोग कर रहे हैं वह उचित तथा वह फसलों के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता के अनुरुप संतुलित मात्रा में है या नहीं। मृदा में पौधों के लिए जो आवश्यक पोषक तत्व पाए जाते हैं उनमें से पौधों द्वारा नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश को अधिक मात्रा में ग्रहण किया जाता है। जिसके कारण इन मुख्य पोषक तत्वों की आपूर्ति उर्वरकों के द्वारा करना आवश्यक होता है। सघन खेती के फलस्वरूप मुख्य पोषक तत्वों के साथ–साथ गौण एवम् सूक्ष्म पोषक तत्व भी अधिक मात्रा में ग्रहण किए जाते है जिससे मृदा में इन तत्वों की उपलब्धता में भी प्रायः कमी आ जाती है जिसकी पूर्ति उर्वरकों, कार्बनिक खादों तथा जैव उर्वरकों के प्रयोग से की जाती है। विभिन्न मृदाओं में मृदा के स्वरूप, फसल चक्र, उर्वरकों एवं खादों के प्रयोग के अनुसार उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा भी भिन्न–2 होती है जिसका निर्धारण मृदा परीक्षण द्वारा किया जाता है मृदा परीक्षण संतुलित, आर्थिक दृष्टि से उपयोगी तथा फसलों की आवश्यकताओं के अनुरूप उर्वरकों एवं खादों की मात्रा एवं अनुपात के निर्धारण के लिए अत्यन्त उपयोगी है। मिट्टी परीक्षण मुख्यतः निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

1. मिट्टी में उत्पन्न दोष जैसे अम्लीयता, क्षारीयता, लवणीयता आदि का पता लगाना तथा उनके सही उपचार की सलाह देना।
2. मृदा की उर्वराशक्ति का पता लगाना तथा मृदा में उपलब्ध पाषक तत्वों के अनुसार विभिन्न फसलों के लिए खादों व उर्वरकों की आवश्यकता तथा उनकी संतुलित मात्रा में प्रयोग की सिफारिश करना।
3. उर्वरकों के प्रयोग से फसलों की अतिरिक्त उपज का आंकलन करना।
4. मिट्टी परीक्षण के आधार पर मृदा उर्वरता मानचित्र तैयार करना तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों का समय–समय पर अध्ययन करना।

ऊपर दिए गए उद्देश्यों में से पहले दो उद्देश्य किसानों से संबंधित है जबकि शेष दो का संबंध नीति–

निर्धारकों तथा वैज्ञानिकों से है जो अन्ततः इनके माध्यम से किसानों को लाभप्रद जानकारी दे सकते हैं। सभी खेतों की मृदाओं की उपजाऊ शक्ति एक समान नहीं होती। अतः उर्वराशक्ति के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करने के लिए प्रत्येक खेत की मिट्टी का परीक्षण अलग से कराना चाहिए।

मृदा परीक्षण का महत्व

वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर मृदा परीक्षण एवं पादप विश्लेषण की नई–नई तकनीकियां विकसित की जा रही है। जिनके द्वारा मृदा एवं पौधों में आवश्यक तत्वों की मात्राएं तथा उनके अनुपात की जानकारी से पौधों के स्वास्थ्य तथा संभावित उपज का आंकलन किया जा सकता है तथा आवश्यकतानुसार ही उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों के प्रयोग से अधिक लाभ की संभावना बढ जाती है। बिना मिट्टी परीक्षण उर्वरकों की मात्रा का प्रयोग पौधों की आवश्यकता से कम होने पर फसल उपज कम मिलती है तथा दूसरी संभावना यह भी रहती है कि आवश्यकता से अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग हो जाए जो आर्थिक दृष्टि से कम लाभकारी तथा पर्यावरण के लिए हानिकारक होता है। दोनों ही परिस्थितियों में पोषक तत्वों की मात्रा का सही–सही प्रयोग नहीं हो पाता है। आवश्यक तत्वों की उचित तथा संतुलित मात्रा का प्रयोग करने पर ही अच्छी गुणवत्ता वाली तथा उत्तम फसल उपज प्राप्त हो सकती है और साथ ही मिट्टी की उर्वराशक्ति भी बनी रहती है।

मृदा नमूने लेने का सही तरीका

मिट्टी परीक्षण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि नमूना कैसे लिया गया है। अच्छा नमूना खेत का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है। यदि नमूना ठीक तरह से नहीं लिया गया है तो अति आधुनिकतम परीक्षण विधियां अपनाने या विशेषज्ञों की सिफारिशों के बावजूद भी मिट्टी परीक्षण के पूरे लाभ नहीं मिल सकते। फसलों की प्रकृति तथा अन्य उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए नमूने लेने की उचित विधि अपनाई जानी चाहिए, जैसा कि नीचे वर्णन किया गया है।

1. फसलों के लिए मृदा नमूने

अन्न–फसलों (धान, गेहूं, मक्का, बाजरा, ज्वार आदि), तिलहनी फसलों (सरसों, तोरिया, मूँगफली, अलसी आदि), दलहनी फसलों (उड़द, मूंग, अरहर आदि), सब्जियों तथा अन्य फसलों के लिए मृदा नमूना लेने का उचित समय फसल कटने के बाद या फसल बोने से लगभग एक माह पूर्व होता है। प्राय बडे फार्म को मिट्टी के प्रकार, फसल चक्र, उर्वरक एवं खादों का प्रबन्धन तथा उत्पादकता आदि में समानता या असमानता के आधार पर विभिन्न नमूनों इकाईयों में बॉट लेते हैं तथा एक इकाई से एक नमूना तैयार किया जाता है। एक इकाई का क्षेत्रफल एक एकड से अधिक तथा कम भी हो सकता है। यह नमूना इकाई मृदा एवं फसल की भिन्नता पर निर्भर करता है। खेत में से 15–20 स्थानों से मिट्टी इकट्ठी की जाती है। नमूने की गहराई प्रत्येक स्थान पर 0–6 इंच (0–15 से.मी.) रखी जाती है। अर्थात् ऊपरी सतह से छः इंच तक की परत ली जाती है।

सामान्यतः मृदा नमूने लेने के लिए, किसानों के लिए सबसे सरल व उपलब्ध औजार खुरपी है। यदि मिट्टी सख्त हो तो इसके लिए बर्मे ऑगर्स का प्रयोग करें तथा ट्यूब ऑगर्स का प्रयोग नरम मिट्टी के लिए किया जा सकता है। विभिन्न स्थानों से ली गई मिट्टी को किसी साफ कपड़े, कागज, पॉलीथीन या फर्श पर एक ढेर बनाकर खूब अच्छी तरह मिलाया जाता है। इसके बाद पूरे ढेर में से लगभग आधा किलोग्राम मिट्टी लेकर एक साफ थैली में रखकर उस पर अपना नाम, पता, नमूना संख्या, फसल विवरण तथा पहचान चिन्ह लिखना चाहिए। यही जानकारी कागज या गत्ते के टुकड़े पर लिखकर थैली के अन्दर भी रख देना चाहिए। इन नमूनों को परीक्षण के लिए मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में भेज देना चाहिए।

2. बागवानी/वृक्षों आदि लगाने के लिए मृदा नमूने

फलवृक्ष (बाग) या दूसरे बहुवर्षीय वृक्ष लगाने के लिए गड्ढ़े की विभिन्न गहराई से अलग–अलग नमूना लेने चाहिए। इन गहराई का अन्तराल 0–15, 15–30, 30–45, 45–60, 60–90 तथा 90–120 से.मी. रखना चाहिए। एक एकड़ (या दो एकड़ तक) क्षेत्रफल से 3 या 4 गड्ढ़े बनाते हैं तथा प्रत्येक गड्ढ़े की गहराई का अन्तराल 0–15, 0–30, 30–45, 45–60, 60–90 तथा 90–120 से. मी. रखते है सभी गड्ढ़ों की विभिन्न गहराई की मिट्टी का एक संयुक्त नमूना अलग–2 स्थान पर रखकर अच्छी तरह मिला लेना चाहिए। अर्थात एक गड्ढ़े की विभिन्न

गहराई की मिट्टी नमूनों को आपस में न मिलाएं। इस प्रकार विभिन्न गहराई के संयुक्त नमूनों में से लगभग 300 से 400 ग्राम मृदा नमूना ले लिया जाता है। इन नमूनों पर नाम, पता, गहराई अन्तराल तथा पहचान चिन्ह आदि अवश्य लिख देना चाहिए। अत्यधिक गीली मिट्टी हो तो उसे छाया में सुखाकर ही भेजना चाहिए।

मृदा नमूने लेते समय आवश्यक सावधानियॉ :

मिट्टी का नमूना लेते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. नमूना लेते समय हमेशा ध्यान रखे नमूने का स्थान वृक्षों के नीचे या फसलों की जड़ों में, गोबर की खाद के गड्ढ़े एवं अलग से किसी गडढ़े के पास नहीं होना चाहिए।
2. ढलान, मिट्टी के प्रकार, फसल उत्पादन, फसल चक्र, उर्वरक एवं खाद का प्रबन्धन आदि गुणों के आधार पर अलग–अलग दिरवने वाले खेतों या उनके भागों से अलग–अलग नमूने तैयार करने चाहिए। रेह, कल्लर (ऊसर) आदि भागों से अलग–2 नमूना तैयार करें।
3. किसी भी दशा में नमूनों का सम्पर्क राख, दवाई, गोबर की खाद तथा उर्वरक, आदि से नहीं होना चाहिए।
4. नमूनों के लिए केवल साफ, नई थैली, साफ प्लास्टिक की बाल्टी या ट्रे व साफ स्थान का ही प्रयोग करें।
5. मिट्टी यदि गीली हो तो पैन के बजाय पैंसिल से लेबल लिखकर थैली में रखें।
6. नमूने का पहचान चिन्ह (क्रम संख्या 1, 2, 3 आदि) तथा सिंचाई का साधन, फसल का नाम, नमूने की गहराई आदि भी लेबल पर अवष्य लिखें।

मृदा परीक्षण के उपरांत उर्वरकों की सही मात्रा का निर्धारण

फसलों के उगाने की कृषि तकनीक के साथ–साथ यदि उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण एवं फसल की आवश्यकतानुसार किया जाए तो फसलों की उपज में बढ़ोत्तरी होती है। मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का संतुलित प्रयोग आर्थिक दृष्टि से उपयोगी होने के साथ–साथ मिट्टी की उर्वराशक्ति बनाए रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न फसलों के लिए उर्वरकों की सही मात्रा के संदर्भ में समय–समय पर वैज्ञानिकों द्वारा उर्वरक संस्तुति की विभिन्न विधियां विकसित की गई है। उनमें से प्रचलित मुख्य विधियां इस प्रकार है।

1. विभिन्न फसलों के लिए सामान्य उर्वरक संस्तुति

इस विधि को विकसित करने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा दशकों पहले देश के विभिन्न भागों, राज्यों एवं विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश उर्वरकों की अलग–अलग मात्रा तथा उनके संयोजन के साथ विभिन्न फसलों पर प्रयोग किए गए इन प्रयोगों के फसलों की उपज पर होने वाले प्रभावों व आर्थिक पहलुओं का मूल्यांकन करने के बाद विभिन्न फसलों के लिए सामान्य संस्तुतियॉ विकसित की गई। कुछ प्रमुख फसलों की सामान्य संस्तुतियॉ सारणी –1 में दी गई है।

सारणी–1: प्रमुख फसलों के लिए सामान्य संस्तुतियॉ

फसलें	उर्वरक तत्वों की मात्रा (किग्रा./है.)		
	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश
धान	120	60	40
गेंहूँ	120	60	40
गन्ना	150	40	80
मक्का	120	60	40
ज्वार	100	40	40
बाजरा	80	40	40
सरसों	80	40	40
सूरजमुखी	80	60	40
अरहर	25	60	0

चना	25	50	0
मूंग	25	50	0
उर्द	25	50	0
आलू	150	80	80
टमाटर	100	60	60
बैंगन	80	60	60

इन सामान्य संस्तुतियों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश का अनुपात संतुलित रूप में रखा जाता है। इससे अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

सीमायें

इस विधि का प्रमुख दोष यह है कि इसमें मिट्टी की उर्वराशक्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है जैसे

(1) प्रत्येक खेत की उर्वराशक्ति अलग–अलग होती है, इसलिए उर्वरकों की एक समान मात्रा सभी खेतों में देना उचित नहीं है क्योंकि जिस खेत की उर्वराशक्ति पहले से ही अधिक हो उसमें एक समान उर्वरकों के प्रयोग से लाभ कम मिलता है।

(2) किसी विशेष तत्व की मात्रा किसी खेत में इतनी अधिक होती है कि उसके लिए उर्वरक प्रयोग करने की आवश्यकता बहुत ही कम या बिल्कुल ही नहीं होती है। फिर भी इस विधि से मिट्टी की उर्वराशक्ति पर ध्यान न दिए जाने के कारण उस खेत में भी सामान्य उर्वरक संस्तुति के अनुसार उर्वरक की मात्रा का प्रयोग किया जाता है। इस दशा में उस उर्वरक से मिलने वाला लाभ बहुत ही कम हो जाता है तथा खेत में विभिन्न तत्वों की मात्रा का संतुलन बिगड़ जाता है।

(3) सभी खेत में सामान्य संस्तुति के अनुसार उर्वरकों के प्रयोग से या तो किसी तत्व की मात्रा मिट्टी एवं फसल की आवश्यकता से अधिक हो जाती है या कम रह जाती है। इससे लाभ तो कम मिलता ही है साथ ही खेत की उर्वरा शक्ति पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

यह विधि;

(1) मध्य उर्वरता वाली मृदाओं के लिए उपयुक्त

(2) पुरानी किस्मों के लिए उपयुक्त

(3) हाइब्रिड किस्मों के लिए संसोधन की आवश्यकता

मिट्टी परीक्षण पर आधारित उर्वरकों की संस्तुति

इस विधि में मिट्टी परीक्षण द्वारा मिट्टी में उपलब्ध जीवांश पदार्थ (कार्बनिक पदार्थ), नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की मात्रा को निम्न, माध्यम एवं उच्च वर्ग में विभाजित कर लिया जाता है (सारणी–2)। इसके आधार पर जिस खेत की उर्वराशक्ति मध्यम वर्ग में होती है उस खेत के लिए उस तत्व की सामान्य संस्तुति में दी गई उर्वरक मात्रा ही प्रयोग की जाती है। अति निम्न एवं निम्न वर्ग में आने वाली उर्वरता के लिए सामान्य संस्तुति का क्रमशः 50 एवं 25 प्रतिशत तक अधिक (मिट्टी में उपलब्ध मात्रा को ध्यान में रखकर) उर्वरक मात्रा की संस्तुति की जाती है। इसी प्रकार अति उच्च एवं उच्च वर्ग में आने वाली उर्वरता के लिए सामान्य संस्तुति का क्रमशः 50 एवं 25 प्रतिशत तक कम उर्वरक की मात्रा की संस्तुति की जाती है। हमारे देश में अधिकतर मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं में यही विधि अपनाई जाती है।

सारणी–2: मिट्टी में उपलब्ध तत्वों का वर्ग निर्धारण

तत्व	निम्न	मध्यम	उच्च
कार्बनिक कार्बन (प्रतिशत)	0.50 से कम	0.50–0.75	0.75 से अधिक
नाइट्रोजन (किग्रा./है.)	280 से कम	280–560	560 से अधिक
फॉस्फोरस (किग्रा./है.)	10 से कम	10–25	25 से अधिक
पोटाश (किग्रा./है.)	120 से कम	120–280	280 से अधिक

इस प्रकार की संस्तुति के समय मिट्टी परीक्षण से ज्ञात उपलब्ध तत्वों की मात्रा को ध्यान में रखा जाता है, अतः उर्वरकों के प्रयोग से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

सीमायें

इस विधि का मुख्य दोष यह है कि इसमें उर्वरक की मात्रा कम या अधिक करने के लिए किसी वैज्ञानिक विधि

का प्रयोग नही किया जाता है। इसके अतिरिक्त किसी तत्व की उपलब्ध मात्रा के बड़े अंतराल के लिए एक ही संस्तुति की जाती है। उदाहरण के लिए 120 से 280 किग्रा./है. उपलब्ध पोटाश की मात्रा के लिए गेहूं, धान एवं मक्का की उन्नत प्रजातियों के लिए 40 किग्रा./है. पोटाश तत्व की ही संस्तुति की जाती है जो कि उचित नहीं है।

मिट्टी में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वों की निर्णायक सीमा के आधार पर सूक्ष्म उर्वरकों की संस्तुति

फसल उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्वों (लोहा, मैंगनीज, जस्ता, तांबा, बोरोन एवं मोलिब्डेनम) का उतना ही महत्व होता है अतः सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव डालती है। चूंकि फसलों को इन तत्वों की आवश्यकता कम मात्रा में होती है। इसलिए इन्हें सूक्ष्म पोषक तत्व कहते हैं। इनकी अधिक मात्रा का प्रयोग फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है। अतः इनके प्रयोग में सावधानी बरतनी चाहिए। इनका प्रयोग तभी करना चाहिए जब मिट्टी में इनकी कमी हो। इस संदर्भ में प्रयोगों द्वारा विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की मिट्टी में उपलब्ध निर्णायक सीमा ज्ञात की गई है। यदि सूक्ष्म तत्वों की मात्रा निर्णायक सीमा से कम हो तो इनके उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए उर्वरकों की संस्तुति सारणी–4 में दी गई है।

सारणी–4 मिट्टी में उपलब्ध सूक्ष्म तत्वों की निर्णायक सीमा एवं सूक्ष्म तत्वों के उर्वरकों की संस्तुति

तत्व	उपलब्धता की निर्णायक सीमा (मिली.ग्रा./कि.ग्रा.)	सूक्ष्म तत्वों वाले उर्वरकों की मात्रा (कि.ग्रा./है.)	उर्वरक का नाम एवं प्रयोग
लोहा*	4.5 (डी.टी.पी.ए. निर्ष्कषित)	50 –100	फैरस सल्फेट मृदा उपयोग
		(5–15 कि.ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.)	1 – 3 प्रतिशत फैरस सल्फेट के दो से तीन स्प्रे 10 दिन के अन्तराल पर
मैंगनीज*	2.0 (डी.टी.पी.ए. निर्ष्कषित)	50	मैंगनीज सल्फेट मृदा उपयोग
		(5 कि.ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.)	1 प्रतिशत मैंगनीज सल्फेट के दो से तीन स्प्रे 15 दिन के अन्तराल पर
जस्ता	0.6 (डी.टी.पी.ए. निर्ष्कषित)	25	जिंक सल्फेट मृदा उपयोग मध्यम गठन वाली मृदा के लिए दो बर्ष में एक बार
		50	जिंक सल्फेट मृदा उपयोग भारी गठन वाली मृदा के लिए
		2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट +1.25 कि.ग्रा. चूना प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत चूना दो – तीन झिडकाव 10 दिन के अन्तराल पर (500 लीटर पानी प्रति है.
तांबा	0.2 (डी.टी.पी.ए. निर्ष्कषित)	4	कॉपर सल्फेट मृदा उपयोग
		0.125 कि.ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	0.025 प्रतिशत कॉपर सल्फेट दो – तीन झिडकाव 10 दिन के अन्तराल पर (500 लीटर पानी प्रति है.
बोरोन	0.5 (गर्म जल विलयशील)	10	बोरेक्स मृदा उपयोग
		1 कि.ग्रा. प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	0.2 प्रतिशत बोरिक एसिड या सोल्यूबॉर के दो से तीन पर्णीय छिडकाव
मोलिब्डेनम**	0.2 (एसिटिक अमोनियम ऑक्जेलिक निर्ष्कषित)	2–3	अमोनियम मोलीब्डेट
		0.5 –1.5 कि.ग्रा. अमोनियम मोलिब्डेट प्रति 500 लीटर पानी प्रति है.	0.1–0.3 प्रतिशत अमोनियम मोलिब्डेट दो–तीन बार 10 दिन के अन्तराल पर

*फसल पर छिडकाव मृदा उपयोग की अपेक्षा अधिक लाभकारी पाया गया है।

**बीज उपचार @ 50–100 ग्रम मोलिब्डेनम अत्यधिक उपयोगी है।

कीटनाशक रसायनों का प्रयोग करते समय आवश्यक सावधानियाँ एवं निर्देश

एन. वी. कुंभारे, के. एस. यादव एवं हरीश कुमार
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

कृषि में कीट एवं रोग हमेश ही किसानों वैज्ञानिकों के लिए बड़ी चुनौती रही है। किसान अपने खेत में अधिक फसल उत्पादन हेतु कीट, रोग एवं खरपतवार के प्रबधन के लिए विभिन्न रासायनिक दवाओं का प्रयोग करते हैं, जिसके फलस्वरुप हमारे अन्न में अधिक मात्रा में अधिक हानिकारक होते हैं। इसी कारणों से आजकल विभिन्न रासायनिक कीटनाशक दवाओं के प्रयोग पर प्रतिबंध लग रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे ज्यादातर किसान बन्धुओं को रसायनिक कीटनाशक दवा के बारे में सही रूप से जानकारी का आभाव होना है।

आमतौर पर कीटनाशक रसायण्न (विष) बहुत ही घातक होते है। इनका इस्तेमाल एवं रखरखाव बेहद सावधानीपूर्वक करना जरुरी है क्योंकि जरा सी असावधानी होने पर बड़ा जोखिम उठाना पड़ सकता है। कीटनाशकों का असावधनी से अंधाधुंद इस्तेमाल करने से मनुष्य तथा मित्र कीटों, पालतू जानवरो एवं पेड़ पौधो के साथ–साथ पर्यावरण पर भी घातक प्रभाव पड़ता है। कीटनाशकों का लगातार प्रयोग करने से कीटों में कीटनाशियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है और घातक कीटों की संख्या में कमी आ जाती है तथा उनको नियंत्रित करना मुश्किल हो जाता है। कीटनाशक रसायन हवा व पानी को भी खराब करते है, जिससे इनसानों एवं दूसरे जीवजंतुओं को नुकसान होता है। इसलिए कीटनाशियों का उचित प्रयोग व रखरखाव बहुत जरूरी है। कीटनाशी जहर को समझ कर सावधानीपूर्वक अनका इस्तेमाल करके छिड़काव करने वाला अपने आपको बचा सकता है। कीटनाशक रसायन को कैसे सुरक्षित एवं प्रभावी ढ़ग से इस्तेमाल किया जाए इसको ध्यान में रखकर कुछ आवश्यक सावधानियाँ एवं दिशा निर्देशों की जानकारी दी जा रही है।

1. कीटनाशकों का प्रयोग करने से पहले कुछ सावधानियाँ

- प्रमाणित किया हुआ कीटनाशक ही खरीदें। हर कीटनाशक के डिब्बे एवं पैकेट पर रसायनिक एवं व्यवसायिक नाम लिखा रहता है। उसकी ठीक से जाँच कर लें
- सीलबंद कीटनाशक ही खरीदें और पैकेट या डिब्बे पर लगी सील को अच्छी तरह से जाँच लें।
- वर्तमान में बहुत सारे कीटनाशक रसायनों के प्रयोग पर भारत सरकार द्वारा प्रतिबंध लगा है उदाहरण के लिए इण्डोसल्फान को 13.05.2011 से उत्पादन, उपयोग एवं बिक्री के लिए पूरे भारत में प्रतिबंधित कर दिया गया है।
- ज्यादा जहरीले और सरकार द्वारा प्रतिबंधित कीटनाशकों को नहीं खरीदना चाहिए।
- कीटनाशक की पूरी जानकारी लेकर कम्पनी द्वारा अनुबंधित दुकान या राज्य सरकार द्वारा स्तीकृत कृषि दुकान से ही दवा खरीदें।
- सफर करतें समय कीटनाशक खाद्यान्न से अलग रखें।
- अतिआवश्यक हो तभी कीट–पंतगो एवं रोग के प्रकोप को ध्यान में रखकर कीटनाश का उपयोग करें।
- फसल में अगर मित्रकीडों की संख्या अधिक मात्रा में हो तो कीटनाशक का छिड़काव कुछ दिनों के लिए टाल दें या अतिआवश्यक हो तभी कीटनाशक की कम से कम मात्रा का छिड़ाव करे या बायोपेस्टी साईड का प्रयोग करें।
- सर्वप्रथम कीटनाशक को लेबल ठीक से पढ़ लें और निर्माता के दिश–निर्देशों का पालन करें।
- कीटनाशक हमेशा सुरक्षित स्थान पर रखें, जहॉ

बच्चे आसानी से पहुँच न सकें।

- हमेश कीटनाशक छिड़काव का काम स्वस्थ, प्रशिक्षित व्यक्तियों से करवायें।
- गर्भवती महिलाएं एवं छोटे बच्चों को दूध पिलानी वाली माताओं को छिड़काव द्रव्य इत्यादि बनाने के काम पर न लगाएं।
- कीटनाशक डब्बे या पैकेट पर दर्भ इस्तेमाल की तारीख निकल जाने के बाद कीटनाशी दवा को नहीं खरीदना चाहिएं।
- आवश्यकतानुसार ही कीटनाशक दवा खरीदना चाहिएं।
- कीटनाशी दवा खरीदते समय डब्बे को अच्छी तरह से देख लेना चाहिएं की वह कहीं से टूटा तो नही है या उसमें लीकेज तो नही है।
- दवा खरीदते समय दूकानदार से उसका बिल जरूर लेना चाहिएं।
- कीटनाशक दवाओं को मनुष्य तथा पशुओं के काम में आने वाली दवाओं के साथ भी नहीं रखा जाना चाहिए।
- कीटनाशक दवाओं को ऐसे कमरे में रखना चाहिए जिसमें धूप व हवा की अच्छी व्यवस्था हों।
- कीटनाशक दवा के प्रयोग के बाद डिब्बों का अच्छी तरह से बंद कर देना चाहिए।

2. कीटनाशक द्रव्य तैयार करते समय एवं छिड़काव करते समय आवश्यक सावधानियाँ

- कीटनाशक रसायनों का प्रयोग अनुमोदित मात्रा के अनुसार ही करें।
- रसायनों की बोतल/डिब्बों में दिये गये निर्देशों के अनुसार ही रसायन का प्रयोग करें।
- कीटनाशक रसायनों को आग एवं बच्चों की पहुँच से दूर रखें।
- कीटनाशक का छिड़ाव करते समय हाथों में दस्ताने व आखों में चश्मों का प्रयोग करें एवं नाक व मुंह को कपडे से ढकें।
- तेज हवा चलते समया कीटनाशक का छिड़ाव न करें।
- हवा की दिशा में ही छिड़ाव करें।
- कीटनाशक का प्रयोग शुष्क मौसम में प्रातः काल में ही करें।
- छिड़ाव करते समय पहने गये कपड़ों को धोने के उपरान्त की पहनें।
- शरीर के जिस अंग मे रसायन लग गया हो, उसे तुरंत पानी से धो लें।
- रासयनों के खाली डिब्बों का प्रयोग घरेलू सामग्री रखने हेतु कभी न करें।
- छिड़काव के समय कीटनाशक के प्रभाव से यदि किसी प्रकार का शारीरक कष्ट हो तो तुरंत अपने नजदीक के स्वास्थ केन्द्र में जायें तथा साथ में उस रासायन की सम्पूर्ण जानकारी चिकित्सक को अवश्य दें।

3. विष निगल जाना

- कीटनाशक निगल जाने की अवस्था में मरीज एक ग्लास गर्म पानी में एक बड़ा चम्मच नमक (15 ग्राम) देखर उल्टी कराएँ। उपचार दोहराएँ जब तक साफ उल्टी नहीं हो जाएं।
- अगर मरीज ने पहले उल्टी की हो तो गर्म पानी में नमक न दें, बल्की ज्यादा–से–ज्यादा गर्म पानी दें। तुरन्त चिकित्सक के पास ले जाएं।

4. श्वास लेने में दिक्कत

- मरीज को तुरंत ताजी हवा में ले जायें।
- घर के सभी दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दें।
- मरीज के कपड़े ढीले करें।
- मरीज का श्वासोच्छवास अगर रूक जाता है तो कृत्रिम श्वास दीजिए।
- मरीज को कंबल से लपेटिए।
- मरीज को शराब न दें।

5. विष का त्वचा पर प्रभाव

- त्वचा को पानी से धोईए।
- त्वचा के दर्द को कम करने के लिए जल्द सफाई बहुत जरूरी है।

6. आँखों का विषबाधा होना

- अगर कीटनाशक का आँखों पर असर होता है तो कम–से–कम 15 मिनट तक आँखो को ठंडे पानी से खूब धोएँ।

इस्तेमाल किये गये कीटनाशक के बारे में डॉक्टर

को पूरी जानकारी दें जिससे अतिप्रभावी उपचार शीघ्र ही हो सकें। जिस कीटनाशक से विषबाधा हुई हो, वो डिब्बा या पैकेट डॉक्टर को तुरंत दिखायें। कीटनाशक के गलत इस्तेमाल से कई बार घटनाएं घटित हो जाती हैं, इसलिए उपर बताई गई बातों का ध्यान में रखते हुए ही कीटनाशक का छिड़काव किया जाए तो काफी हद तक इनके हानिकारक असर से बचा जा सकता है।

भारत में निषेध/प्रतिबंधित कृषि रसायन (20 अक्टूबर, 2015 से लागु)

प्रतिबंधित पीड़कनाशी

1. आल्डिकार्ब 2. ऑल्ड्रिन
3. बेन्जिन हेक्साक्लोराइड़ (बीएचसी) 4. कैल्सियम सायानाईड
5. क्लोरबेन्जिलेट 6. क्लोरडेन
7. क्लोरफेनविनफॉस 8. कॉपर एसेटोआर्सेनाइट
9. डाइब्रोमोक्लोराप्रोपेन 10. डायैल्ड्रीन
11. एन्डोसल्फॉन 12. एन्ड्रिन
13. इथाईल मर्करी क्लोराइड 14. इथाईल पैराथियॉन
15. इथिलीन डाइब्रोमाइड (ई.डी.बी.) 16. हेप्टाक्लोर
17. लिन्डेन (गामा–एच.सी.एच) 18. मैलिक हाइड्रैजाइड
19. मेनाजॉन 20. मेटोक्स्यूरॉन
21. नाइट्रोफेन 22. पैराक्वाट डाइमिथाइल सल्फेट
23. पेन्टाक्लोरो नाइट्रोबेन्जीन (पी.सी.एन.बी.) 24. पेन्टाक्लोरोफिनॉल
25. फिनाइल मर्करी ऐसिटेट 26. सोडियम मिथेन आर्सोनेट
27. ट्राइक्लोरो एसिटिक एसिड (टीसीए) 28. टेट्राडिफॉन
29. टॉक्साफीन (कैम्फीक्लोर)

भारत में सीमित प्रयोग के लिए निर्धारित कृषि रसायन

क्र.स.	कीटनाशी/पीडकनाशी	सीमित प्रयो निर्देशिका की विस्तारित विवरण
1.	एल्युमीनियम फॉस्फाईड	इसके द्वारा पीड़क नियंत्रण कार्रवाई सरकारी विशेषज्ञों की कठोर निगरानी में सरकार/सरकारी उपक्रम/सरकारी संस्थान /पीड़क नियंत्रण कार्यक्रम द्वारा अनुष्ठित होता है। एल्युमीनियम फॉरफाइड के 3 ग्राम के वाटिकाओं (गोली) के 10 से 20 बाटिका धारणक्षम टयुब आधारों का उत्पादन, विक्रय एवं प्रयोग सम्पूर्ण रूप से प्रतिबंधित है।
2.	कैप्टाफॉल	यह केवल बीजोपचार के लिए प्रयोग होता है एवं इसका छिड़काव पूर्णतयः निषिद्ध है। शुष्क बीजोपचार हेतु प्रस्तुत कैप्टाफॉल 80 प्रतिशत पाउडर का भारत में प्रयोग हेतु प्रस्तुति निषिद्ध है, मात्र निर्यात के लिए प्रस्तुति की अनुमति है।
3.	साइपरमेथ्रिन	साइपरमेथ्रिन 3 प्रतिशत धूम्र उत्पादक जन साधारण द्वारा प्रयोग की अनुमति नहीं है। यह केवल मात्र पीड़क नियंत्रण कार्यकर्ता द्वारा प्रयोग होना है।
4.	डैजोमेट	चाय की झाड़ी पार इसके प्रयोग की अनुमति नहीं है।
5.	डायाजिनॉन	घरेलु उपयोग के अतिरिक्त कृषि में प्रयोग वर्जित है।
6.	डाइक्लोरो डाइॅफेनाइल ट्राइक्लोराइथेन (डी. डी टी.)	डी. डी टी के प्रयोग की परिमाण आंतरिक जन स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के लिए कोई भीषण महामारी फैलने की परिस्थिति में 10,000 मिट्रिक टन तक सीमित है अन्यथा, कृषि में इसका प्रयोग प्रत्याहार कर लिया गया है।
7.	फेनिट्रोथियॉन	अनुसूचित रेगिस्तानी क्षेत्र में टिड्डी नियंत्रण तथा अन्यत्र जन स्वास्थ्य संबंधित प्रयोगें के अतिरिक्त कृषि में फेनिट्रोथियॉन का प्रयोग वर्जित है।
8.	फेनाथियॉन	टिड्डी नियंत्रण, घरेलु तथा जन स्वास्थ्य संबंधित प्रयोगों के अतिरिक्त कृषि में इनका प्रयोग वर्जित है।
9.	मिथॉक्सी इथाईल मार्क्युरिक क्लोराइड (एम ई एम सी)	आलू एवं गन्ने के बीजोपचार के अतिरिक्त किसी भी अन्य प्रयोग के लिए प्रतिबंधित।
10.	मिथाईल ब्रोमाईड	मिथाईल ब्रोमाईड का प्रयोग सरकारी विशेषज्ञों के कठोर निगरानी में केवल मात्र सरकार/सरकारी उपक्रम/सरकारी संस्थान /पीड़क नियंत्रण कार्यकर्ता ही कर सकते हैं।
11.	मिथाईल पैराथियॉन	मिथाईल पैराथियॉन 50 प्रतिशत ई.सी. एवं 2 प्रतिशत डी.पी. संरूपों के फलों एवं सब्जियों पर प्रयोग प्रतिबंधित है। इसका प्रयोग पीड़कनाशी पंजीकरण समिति द्वारा अनुमोदित केवल उन फसलों पर होना है जिनके कारण परागण के लिए मधुमक्खियां नही आती हैं।
12.	मोनोक्रोटोफॉस	सब्जियों पर प्रयोग प्रतिबंधित
13.	सोडियम सायानाइड	भारत सरकार के पादप सुरक्षा सलाहकार द्वारा अनुमोदित विशेषज्ञ निगरानी में अनुष्ठित कपास के गट्ठरों के धूम्रण के लिए केवल अनुमोदित

अमरूद सुधार हेतू परम्परागत एवं आणविक प्रजनन तकनीक

निमिशा शर्मा[1], संजय कुमार सिंह[1], मीनाक्षी मलिक[2]
[1]फल और बागवानी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई–दिल्ली–110012
[2]राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन संस्थान, नई–दिल्ली–110012

अमरुद उष्ण– उपोष्ण कटिबंधीय देशो की एक महत्वपूर्ण फल फसल है। यह व्यावसायिक रूप से भारत, चीन, इंडोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका, फ्लोरिडा, हवाई, मिस्र, यमन, ब्राजील, मेक्सिको, कोलंबिया, वेस्टइंडीज, क्यूबा, वेनेजुएला, न्यूजीलैंड, फिलीपींस, वियतनाम और थाईलैंड की मुख्य फसल है और इसकी वजह साल भर उपलब्धता, उच्च पोषण स्तर, औषधीय मूल्य, वहन करने योग्य कीमत, परिवहन, हैंडलिंग आदि है। यह भारत के लगभग सभी राज्यों में उगाया जाता है। भारत में 160 से अधिक अमरूद की किस्मे है जिनकी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में मांग है। यह कोलेस्ट्रोल को कम करने में मदद करता है साथ ही दिल के रोगों से बचाव करता है। विटामिन ए कीटाणु को रोक कर शरीर में प्रवेश करने से पहले ही खत्म कर देता है। इसमें उपस्थित लायकोपिन सूरज की हानिकारक किरणों से बचाता है तथा त्वचा कैंसर से भी सुरक्षा करता है। इसे इसकी प्राकृतिक अवस्था में खाना सबसे ज्यादा फायदेमंद होता है सुबह के समय इसके रस को पीना भी काफी लाभकारी होता है।

अमरुद के विकास हेतु परम्परागत तकनीक

1. चयनित प्रजनन

अमरुद परपरागित फसल है इसलिए पोध से लगाया जाता है जिसके कारण जेविक विविधता काफी होती है। फलो की अच्छी उपज और गुणवंता के लिए इसे प्रयोग में ला सकते है। लखनऊ–49, इलाहबाद सुर्ख, पलुमा, अर्का मिरदुला, पन्त प्रभात आदि इसी तरह से तैयार की गयी है।

2. संकर प्रजनन

अमरुद की संकर किस्मों को हस्त परागण के माध्यम से विकसित करने के लिए कृत्रिम चयन और आनुवंशिक विविधता को व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जा सकता है। अमरूद सुधार कार्य से सफेदजैम, कोहिर सफेदा और भारत में अर्का अमूल्य जैसी संकर किस्मे विकसित हुई है। सिडियम मोले और सिडियम गुअजावा के बीच इंटर विशिष्ट संकरण से ऐसे संकर उत्पन हुए है जो विल्ट के लिए प्रतिरोधी होने के साथ साथ संगत कलम का भी काम कर रहे हैं।

अमरूद सुधार के लिए आणविक दृष्टिकोण

अमरुद में परंपरागत तरीके के माध्यम से प्रजनन एक दीर्घकालिक और कठिन प्रक्रिया है। आणविक मार्कर जीनोमिक्स सर्वेक्षण के लिए मुख्य उपकरण की तरह काम कर रहे हैं। आणविक चिन्हक और घने आणविक आनुवंशिक नक्शे की उपलब्धता से मार्कर सहयक चयन संभव हो गया है। मार्कर की मदद से होने वाले चयन में डी. न. ए. मार्कर प्रमुख है। हर मार्कर की अपनी कमिया और लाभ है। पिछले कुछ दशको में बहुत से मार्कर विकसित हुए है जिनमे से आर. ए. पी. डी., आई. आई. एस. एस. आर, एस. एस. आर., वी. एन. टी. आर., ए. एफ. एल. पी., आर. एल. एफ. पी. है जो आनुवंशिक विविधता को जानने, किस्मों के चयन, आनुवंशिक नक्शे बनाने में महतवपूर्ण है। आजकल एस. एन. पी. का बहुत प्रचलन है क्योकि यह अकेले नुक्लियोटाइड की पहचान भी कर सकता है।

आनुवंशिक विविधता और जर्मप्लाज्म भेदभाव के लिए आणविक मार्कर

आणविक दृष्टिकोण किस्मों या प्रजातियों स्तर पर आनुवंशिक विविधता निरुपक के लिए उपयोगी होते हैं। आणविक मार्कर आनुवंशिक परिवर्तन, पहचान, प्रजनन और उत्पादन आबादी में संबंधों के प्रबंधन से संबंधित सवालों के जवाब देने के लिए इस्तेमाल किये जातें है। यह पौधों की वृद्धि के दौरान किसी भी समय पर और किसी भी ऊतक पर इस्तेमाल किये जा सकते हैं। मार्कर को सफलतापूर्वक पितृत्व परीक्षण, बीज के बागों मे बाहरी पराग संदूषण के अध्ययन आदि के अनुमान लगाने के प्रयोग में भी उपयोग किया जा सकता है। जिसका उपयोग जीन फ्लो के अध्यन

में किया जाता है। आनुवंशिक परिवर्तन को सूक्ष्म प्रसार और परखनली प्रवर्धन से तैयार पोधो में भी जानना जरुरी है। ताकि कायिक विविधता से बचाव किया जा सके।

अमरुद में जीनोमिक उपक्रम

दूसरी पीढ़ी के अनुक्रमण (आरएनए और चिप अनुक्रमण, इलूमिना, सॉलिड, रॉश (454) आदि) और सबसे हाल ही में तीसरी पीढ़ी के अनुक्रमण प्रौद्योगिकी जैसे उन्नत स्वचालित जीनोम अनुक्रमण प्रौद्योगिकी के उपयोग के कुछ ही घंटों में समवर्ती अनुक्रम के हजारों या लाखों की सख्यां में प्राप्त की जा सकती है। जैवप्रौद्योगिकी सूचना के लिए राष्ट्रीय केन्द्र (एन. सी. बी. आई.) दुनिया के सबसे बड़ा डेटाबेस है जिसमे जीनोमिक और प्रोटिओमिक अनुक्रम से संबंधित सभी जानकारी है। अमरुद की जीनोमिक जानकारी तालिकाः 2 में दी गयी है। कार्यात्मक जीनोमिक्स दृष्टिकोण के माध्यम से महत्वपूर्ण जीनों की पहचान की जा सकती है जो काफी उपयोगी है।

भावी संभावनाए

अमरुद फसल पारंपरिक रूप से ग्राफ्टिंग, काटने, स्टूलिंग और गूटी विधि से लगाया जाता है जिसकी अपनी सीमाएं है। उपभोक्ताओं द्वारा कुछ और नरम बीज पसंद किये जाते है जो एनीप्लोईडी प्रजनन के लिए एक खास जरूरत को दर्शाता है। पारंपरिक प्रजनन से अमरूद में तृतीयक उत्पादन में कई कठिनाइयां हैं। इस दिशा में उतक सवर्धन और जैवप्रौद्योगिकी एक मील का पत्थर साबित हो सकती है। अभी तक शूट टिप संवर्धन में इस दिशा में सफलता मिली है। ऐसे पोधो में कायिक प्रतिरूप भिन्नता मिलती है जो विल्ट प्रतिरोधी पोधे विकसित करने के काम आ सकती है। साथ ही बहुत से जेविक और अजेविक प्रतिरोधी पोधो का भी चयन किया जा सकता है। साथ ही ऊतक सवर्धन से बनाये पोधे एक सामान होते है। परागकण को भी अगुणित सवर्धन के लिए उपयोग में लाया जाता है। अतः सूक्ष्म प्रवर्धन से अमरुद के एक जैसे बहुत सारे पौधे तेयार किये जा सकते हैं जिनका आनुवंशिक संघटन एक जैसा होता है और उपयोगी गुणों से युक्त पोधे मिल जाते है।

जेनेटिक मैपिंग

जीन अनुक्रमण की आधुनिक तकनीकों, माइक्रोएरे प्रयोगों से एक जीव की कोशिका में जीन और प्रोटीन की अभिव्यक्ति समझी जा सकती है। इस तरह से फलो में भी जेनेटिक मैपिंग की जा सकती है जिससे उपयोगी जीनो का पता लगाया जा सकता है जो मात्रात्मक गुणों को निर्धारित करते है। जीनोटीपीकली गुणों का पता लगाना ज्यादा अच्छा है क्योकि फलो में बाहरी तोर पर पता लगाने के लिए फल आने तक इंतजार करना पड़ता है साथ ही जमीन की भी ज्यादा जरूरत रहती है जिससे लागत अधिक आती है।

अमरूद में जेनेटिक परिवर्तन के अध्ययन

जेनेटिक इंजीनियरिंग प्रजनन की अवधि को छोटा करने में एक महत्वपूर्ण विकल्प के तोर पर सामने आया है। जेनेटिक परिवर्तन कोषिकय स्तर पर पौधों की आनुवंशिक फेरबदल के लिए अवसर खोलता है। यह एकल बागवानी लक्षण को बिना दूसरे गुणों को बदले परिवर्तित कर सकता है। इस क्रिया हेतु एक अच्छे एक्सप्लांट की जरुरत होती है। अमरूद में ऊतक सवर्धन अध्ययन परिवर्तन के अध्ययन के लिए एक अनिवार्य पूरक हैं। अमरुद में एच. पी. एल. जीन के लिए पोधा तेयार किया गया है। भविष्य में इस तकनीक द्वारा और भी पराजीनी पोधे बनाने की दिशा में कार्य जारी है।

निष्कर्ष

अमरुद पोषकता से भरपुर होने के कारण अपने देश के साथ साथ बहार के देशो में भी लोकप्रिय है। अमरूद पोषण और निर्यात बाजार के हिसाब से काफी मूल्यवान फसल है।

अमरूद की फसल पारंपरिक ग्राफ्टिंग, काटने के माध्यम से या हवा लेयरिंग तक सीमित है। पारंपरिक प्रजनन से अमरूद में त्रिप्लोइड के उत्पादन में कई कठिनाइयों है। आनुवंशिक सुधार में तेजी लाने के लिए, नए तरीकों का पता लगाना साथ ही ऊतक संवर्धन और बेहतर अमरूद की खेती की सूक्ष्म प्रवर्धन द्वारा करना भी जरुरी है। उभरते जैवतकनीकी से शोधकर्ताओं द्वारा परखनली प्रवर्धन के से अमरूद के अंकुर पौधों का तेजी से गुणन किया जाता है। जैवप्रौद्योगिकी तकनीक का उपयोग अमरुद में प्रगति के नए आयाम खोलता है।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क 80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600

पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा

मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित

फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,